RNI No. 7127/60 डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2023-25

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 61 अंक : 05 प्रकाशन तिथि : 25 अप्रेल कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 मई, 2024

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

पद्मिनी का था जौहर प्यारा
क्यो कर वह बिसरेगा रे।

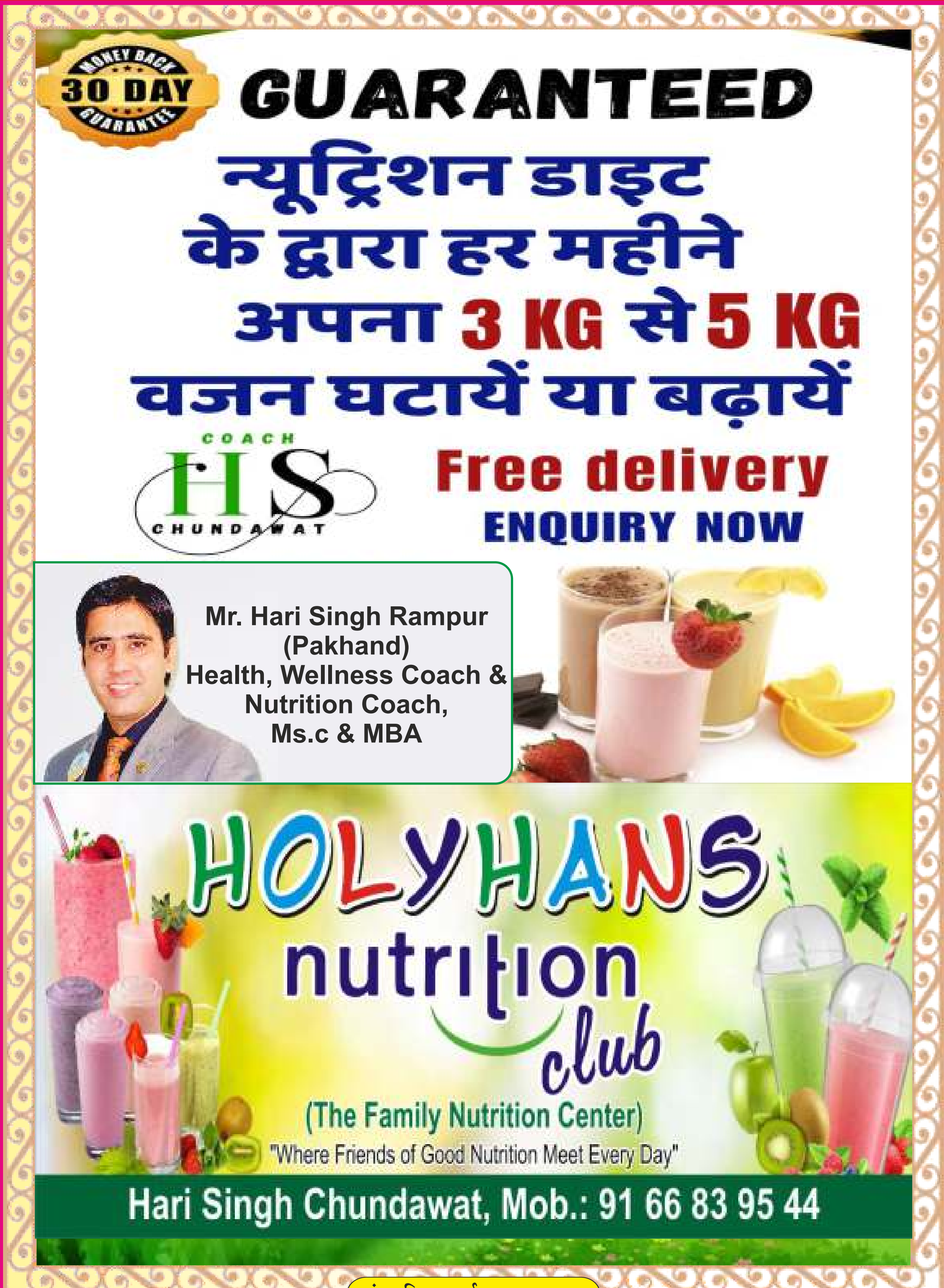
MONEY BACK 30 DAY GUARANTEE
GUARANTEED
न्यूट्रिशन डाइट
के द्वारा हर महीने
अपना 3 KG से 5 KG
वजन घटायें या बढ़ायें
COACH HS CHUNDAWAT
Free delivery
ENQUIRY NOW
Mr. Hari Singh Rampur
(Pakhand)
Health, Wellness Coach &
Nutrition Coach,
Ms.c & MBA
HOLYHANS
nutrition
club
(The Family Nutrition Center)
"Where Friends of Good Nutrition Meet Every Day"
Hari Singh Chundawat, Mob.: 91 66 83 95 44

संघशक्ति

4 मई, 2024

वर्ष : 61 अंक : 05

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह जी रोलसाहबसर	06
❍ पूज्य श्री तनसिंह जी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	07
❍ चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी	✍ संकलन-श्री विरेन्द्र सिंह तलावदा	08
❍ माँ का दूध क्यों लजाऊँ	✍ श्री युधिष्ठिर	12
❍ बीकानेर रियासत का संक्षिप्त इतिहास	✍ श्री खींवसिंह सुलताना	14
❍ जौहर एवं शाका किसे कहते हैं?	✍ संकलन-श्री विरेन्द्र सिंह तलावदा	16
❍ सत्संग सुनने की विद्या	✍ स्वामी श्री रामसुखदास जी	18
❍ मंत्र की शक्ति	✍ आचार्य श्री महाप्रभ	23
❍ महान क्रान्तिकारी राव गोपालसिंह खरवा	✍ श्री भंवरसिंह मांडासी	26
❍ दु:खदायी होड़	✍ श्री गुमानसिंह धमोरा	29
❍ अपनी बात	✍	32

समाचार संक्षेप

शिविर :

आलोक आश्रम बाड़मेर में 8 से 10 मार्च तक एक तीन दिवसीय शिविर सम्पन्न हुआ। उस शिविर में 25 वर्ष से अधिक आयु वाले स्वयंसेवकों को ही बुलाया गया था। राजस्थान के विभिन्न जिलों से सहयोगी सम्मिलित हुए। एक शिविरार्थी पंजाब के मोहाली जिले से भी पहुँचा। माननीय संरक्षक श्री भगवान सिंह जी व माननीय संघप्रमुख श्री के सान्निध्य में शिविर सम्पन्न हुआ। सहयोगी वर्ग में कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने पहले कभी श्री क्षत्रिय युवक संघ का शिविर नहीं किया था।

माननीय संरक्षक श्री ने बताया कि श्री क्षत्रिय युवक संघ एक साधना मार्ग है। हर मनुष्य में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद व मत्सर के कुछ भाव रहते ही हैं। इनको नियंत्रित रखने के लिए साधना के मार्ग को अपनाना ही श्रेयस्कर है। संघ में जिन्होंने संघ की आज्ञा का पालन करना सीख लिया, उनके जीवन में इन षट दोषों में कमी आना प्रारम्भ हो जाता है। पू. तनसिंह जी साथ चलने वालों की कड़ी परीक्षा लेते रहते थे। कड़ी परीक्षा का कारण होता था साधक संघ के लक्ष्य को अपना लक्ष्य बना ले और उसके मार्ग पर चल पड़े। ऐसे इस मार्ग पर चलने वाले स्वयंसेवक नींव के पत्थर हैं जिस पर यह संघ का महल खड़ा है। नये आने वालों के लिए ऐसे लोगों का जीवन प्रेरणादायी बनता है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ की कार्य प्रणाली पूर्व रूप से गीता पर आधारित है। संघ साहित्य की पुस्तक 'गीता और समाज सेवा' में इसे बहुत स्पष्ट शब्दों में समझाया गया है। गीता में समझाने वाले कृष्ण ब्रह्म हैं और सुनने वाला अर्जुन जीव है। गीता की कथा जीव और ब्रह्म की है। संघ का पूरा साहित्य पठनीय है क्योंकि यह प्रणाली गीता पर ही आधारित है। इस साहित्य के माध्यम से हम श्री क्षत्रिय युवक संघ को समझ सकेंगे। समझ कर हम इसे भली प्रकार अपना सकें इसी से हमारे जीवन में निखार आएगा। यह आवश्यक है, क्योंकि 'निज को न बनाया तो जग रंच नहीं बनता।' अतः अपने को महत्त्व देना चाहिए। अकड़ नहीं, अहंकार नहीं, तुष्टि नहीं-जागृत्ति। इस जागृति से जीवन में जो क्रांति घटित होती है, उसे घटने दें।

23 से 25 मार्च तक काणेटी (गुजरात) में मानतीय संघप्रमुख श्री के सान्निध्य में संघ का प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न हुआ। संघ के एक सहगीत की पंक्ति है- 'सहयोगी जीवन के सपने मूर्त हुए रे स्वर्ग यहीं है।' संघ प्रमुख श्री ने बताया कि सहयोग देवताओं का गुण है, अत: हमारे सहयोगी भाव में देवत्व का ही प्रकटीकरण है। देवता स्वर्ग में रहते हैं, ऐसा कहा जाता है, तो जहाँ सहयोगी भाव हो वहीं स्वर्ग है। इस सहयोगी भाव को पूरे समाज में प्रसारित और स्थापित करना संघ चाहता है। संघ की इस चाह और उसके लिए किए जाने वाले कार्य को समझना हो तो संघ में आकर ही इसे समझा जा सकता है। संघ में आएं, इसकी आज्ञा का पालन करें, उसी के अनुसार जीवन जीना प्रारम्भ करें तो समझ में आएगा कि संघ एक जीवन दर्शन है। हमारे जीवन व्यवहार में इसका प्रकटीकरण हो इसके लिए अभ्यास आवश्यक है। नियमित और निरन्तर अभ्यास। संघ वह विद्यालय है जिसमें हमारे कुल की मर्यादाएँ, हमारे कुल के गुणों को न केवल बताया जाता है, बल्कि, उनका अभ्यास करवाया जाता है।

23 से 26 मार्च तक एक प्राथमिक शिविर ध्रोल स्थित भायात राजपूत छात्रावास में सम्पन्न हुआ। पू. तनसिंह जी की समाज पीड़ा का परिणाम श्री क्षत्रिय युवक संघ के

रूप में हमें मिला जो अनवरत रूप से क्षत्रियोचित संस्कारों का निर्माण करने में जुटा हुआ है। गुजरात में सम्पन्न दोनों (काणेटी, ध्रोल) ही शिविरों में होली का त्योहार भी सामुहिक रूप से मनाया गया।

6 से 9 अप्रैल तक बान्दा (उत्तरप्रदेश) में जमालपुर रोड़ स्थित रानी लक्ष्मीबाई इन्टर कॉलेज में तथा 12 से 14 अप्रेल तक घाटमपुर (उत्तरप्रदेश) के सनराइन पब्लिक स्कूल टीकमापुर में प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न हुए।

7 से 10 अप्रेल तक श्रीमद् कालूगणी समाधि स्थल, आमली रोड़, गंगापुर में बालिकाओं का प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न हुआ जिसमें 211 बालिकाएँ सम्मिलित हुई।

अन्य कार्यक्रम :

- आलोक आश्रम के शिविर में संघ की केन्द्रीय बैठक रखी गई जिसमें केन्द्रीय कार्यकारी तथा संभाग प्रमुख उपस्थित रहे। सत्र के कार्य की समीक्षा की गई और उच्च प्रशिक्षण शिविर के लिए योजना बनी। जन्म शताब्दी वर्ष के समय सम्पर्क में आये नए क्षेत्रों में संघ कार्य की सम्भावनाओं पर भी विचार-विमर्श हुआ। सहयोगियों के स्नेह मिलन रखने की भी चर्चा हुई।
- दिल्ली में सहयोगियों से चर्चा का कार्यक्रम चाणक्यपुरी स्थित तेजस कैंप में सम्पन्न हुआ। जन्म शताब्दी समारोह में जिन्होंने सहयोग किया उन सभी को बुलाया गया था। दिल्ली, गाजियाबाद, फरीदाबाद, गुड़गांव, नोयडा तथा एनसीआर क्षेत्र के सहयोगी उपस्थित रहे। हमारे पूर्वजों द्वारा हमारे कर्तव्य पालन की जो परिपाटी स्थापित की गई थी, उसको छोड़ देने पर ही आज स्थिति बिगड़ गई है। संघ अपने कर्तव्य पालन का मार्ग ही दिखा रहा है।
- दुर्गा महिला विकास संस्थान की नाथावतपुरा (सीकर) स्थित छात्रावास में बालिकाओं द्वारा महा शिवरात्रि पर्व पर भगवान शिव की आराधना में सामुहिक यज्ञ किया गया तथा सभी के लिए मंगल कामना की।
- श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन की बिलाड़ा व भोपालगढ क्षेत्र की विस्तार बैठक पीपाड़ शहर स्थित श्री उदय राजपूत छात्रावास परिसर में सम्पन्न हुई। इस बैनर तले हुए गत 5-6 वर्षों के कार्यों की समीक्षा की गई।
- होली के उत्सव पर राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र आदि सभी प्रांतों में संघ के स्वयंसेवकों ने कार्यक्रम मनाया।
- बीकानेर व पोकरण में संभागीय कार्यालयों में कार्य योजना बैठक सम्पन्न हुई।
- मातृशक्ति ने कुछ स्थानों पर फागोत्सव मनाया। जयपुर में संघशक्ति भवन में आयोजित फागोत्सव में शिविरों की जानकारी दी गई। स्त्रियों की बीमारियों के बारे में जानकारी दी गई। पद्मिनी शाखा सूरत में होली का महत्त्व बताया गया, दुर्गा महिला भायंदर शाखा में भी होली मनाने महिलाएँ व बालिकाएँ बड़ी संख्या में उपस्थित रही।
- उत्तर गुजरात संभाग के अरवल्ली प्रान्त में डॉ. नागेन्द्र सिंह फार्म हाउस पर 10 मार्च को स्नेह-मिलन कार्यक्रम आयोजित हुआ। स्नेह मिलन में संघ कार्य के सम्बन्ध में चर्चा हुई तथा पूज्य श्री तनसिंह जी जन्म शताब्दी वर्ष की स्मारिका का वितरण भी हुआ। 7 अप्रेल को इसी प्रान्त के सिनावाड़, कामभरोड़ा, पिसाल आदि गाँवों में सम्पर्क यात्रा का कार्यक्रम भी रखा गया जहाँ समाज बन्धुओं को श्री क्षत्रिय युवक संघ सम्बन्धी जानकारी दी गई।
- 31 मार्च को सूरत प्रान्त की समीक्षा बैठक आयोजित की गई जिसमें पिछले 6 माह के कार्यों व सहयोगियों के दायित्वों पर विचार हुआ।

चलता रहे मेरा संघ

(भवानी निकेतन, जयपुर में आयोजित उच्च प्रशिक्षण शिविर–2023 में माननीय संरक्षक श्री भगवान सिंह रोलसाहबसर द्वारा 26.05.2023 को प्रदत्त प्रभात संदेश)

तप.. समस्त विपरीत परिस्थितियों के आ जाने पर भी ध्येयनिष्ठ व्यक्ति उसको अनुकूल बना लेते हैं और यही तप है। महात्मा बुद्ध एक राजकुमार थे और अपने ध्येय की याद आते ही सब कुछ छोड़कर निकल गए। तो हम कल्पना नहीं कर सकते कि उनके जीवन में कितनी बाधाएं आई होंगी। हमने उनके चित्र देखे हैं समाधिस्थ होने के और हम उसको मानते हैं कि यही बुद्ध है। वास्तव में बुद्ध तो वही है लेकिन बुद्ध बनने के लिए कितनी परेशानियों से, कितनी बाधाओं से, कितनी प्रतिकूलताओं से निकलना पड़ता है, ये कोई तपस्वी ही जान सकता है।

महावीर स्वामी भी एक राजकुमार थे। अपने ध्येय की याद आते ही निकल पड़े और घोर जंगल में, घनघोर जंगल में, जहाँ हिंसक जानवर, रेंगने वाले अजगर वगैरा, ये सब उनको मिले, कइयों ने डसा भी। कपड़े पहन के गए थे, नंगे नहीं गए थे। लेकिन होश ही नहीं रहा कि मुझे कपड़े... मेरे कपड़े हैं या नहीं... जंगल में, कांटेदार वृक्षों में, कांटेदार झाड़ियों में वो उलझते गए और निकलते गए। उन्होंने परवाह नहीं की... और उनके अनुयायियों ने मान लिया कि वो नग्नावस्था में निकले थे। यह सरासर झूठ बात है। कपड़े पहन के निकले थे और नग्न हो गए थे। ये सब तप का परिणाम है।

भगवान राम पिता की आज्ञा से, माता की आज्ञा से अथवा इच्छा से वनवास को गए। माता सीता उनके साथ थी, लक्ष्मण...उनके भैया...वो भी साथ थे जंगलों में भटकते हुए...और उनका अपना लक्ष्य था संसार का एक दुर्दांत राक्षस से बचाव करना अर्थात उसको मारना। कुछ भी नहीं था...वनवासियों को साथ में लेकर अपने ध्येय की पूर्ति की...डटे रहे, लगे रहे, रुके नहीं। इसी का नाम तप है।

हम लोग यहाँ ऐसा ही एक तप कर रहे हैं। इन ग्यारह दिन में प्रकृति ने हमारी कितनी परीक्षा ली है, लेकिन कोई विचलित नहीं हुआ और इसीलिए मैं बार–बार कहता हूँ कि आप सब तपस्वी हैं। मैं बरगलाने की बात नहीं कर रहा हूँ, मैं अनुभव की बात कर रहा हूँ। ध्येयनिष्ठ व्यक्ति समस्त प्रतिकूलताओं को अनुकूल बना लेता है, आप लोगों ने भी बनाया है। किसी भी बाधा से आप रुक नहीं पाए, चलते जा रहे हैं, चलते जा रहे हैं, चरैवेति.. चरैवेति।

प्रारम्भ में हम जब शाखा में आया करते थे तब एक कहानी हमको सुनाई गई, मुझे आज भी याद है, कि एक गाँव में पहाड़ी के ऊपर शिवजी का मंदिर था और तलहटी में काफी दूर बस्ती थी। एक बालक रोज जाता था दीपक करने के लिए, अगरबत्ती करने के लिए और करके वापस आता था। एक दूसरा बालक जाया करता था उस दीपक को बुझाने के लिए... और अगरबत्ती की गंध है, यह मूर्ति ले रही है अथवा नहीं, इसलिए उसकी नाक में रुई डाल देता था। यह रोजाना का इनका क्रम चलता रहा। गाँव के सब लोग जानते थे कि दोनों ध्येयनिष्ठ हैं। एक दिन... आज की तरह से... जोरदार बरसात हुई और तलहटी तक... पहाड़ी तक पहुँचना कठिन हो गया तो जो बालक अगरबत्ती और दिया करने जाता था, उसने देखा... इन विपरीत परिस्थितियों में कैसे जाऊँ? उसने अपने घर पर ही दिया जला दिया, अगरबत्ती कर दी। यह दूसरे बालक को पता नहीं था उसने सोचा कि अगरबत्ती की सुगंध ले रहा होगा पठ्ठा, दीपक भी बुझाना है... तो वह तैरता हुआ गया और जाकर के देखा कि ना अगरबत्ती है और ना दीपक है और कहते हैं... हमको बताया गया था... कि उसको भगवान के दर्शन हो गए। तो जो समस्त विपरीत परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना लेते हैं, वो तपस्वी होते हैं। आपका तपस्वी होने में किसी भी प्रकार का मुझे कोई संदेह नहीं है। सतत तेलधारावत हमारी अभीप्सा बनी रहे, यह आज के मंगल प्रभात में हमारे लिए क्षत्रिय युवक संघ का मंगल संदेश है।

पूज्य श्री तनसिंह जी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

जब कोई नवागन्तुक सांघिक कुटुम्ब का हिस्सा बना है, तो पूज्य श्री तनसिंह जी ने उन्हें अपना आत्मीय समझ कर कहा–

''अब तुम मेरे जीवन भर के सहभागी बन गये हो। अब तुम्हारा और मेरा भाग्य विधाता ने एक धागे में बांध दिया है। जियेंगे तो मिलकर भीख मांगेंगे और मरेंगे तो साथ ही तड़प कर मरेंगे।

जब से तुम मेरे कोटुम्बीय बने, तब तो मुझे इस जीवन में जीने की प्रेरणा मिली। मेरे सहयोगी! जब तुम्हारा और मेरा शाश्वत सम्बन्ध बन गया और तुम मेरे कौटुम्बीय जन बन गए तो कुछ बातों का तुम्हें सदैव ध्यान रखना है। यही बातें मेरे सहयोगी होने की आवश्यक शर्त है।''

पूज्य श्री तनसिंह जी ने अपने एक नवागन्तुक को पत्र लिखा –

प्रिय...

सस्नेह जय संघ शक्ति।

सांघिक दृष्टि से तुम्हारा जीवन बड़ा संक्षिप्त रहा है। योग्य तो तुम पहले ही शिविर में हो गए थे, पर अधिक स्पष्टता और निश्चय के लिए दूसरे शिविर में ही तुम्हें वह प्राप्ति हो गई, जो अनेक लोगों को अनेक शिविरों के बाद भी नहीं होती।

शिविर के सिवाय तुम्हारा सांघिक जीवन भी कुछ नहीं था। पता नहीं क्यों तुम्हें बैठे–बैठे शिविर करने का विचार इतनी उग्रता से हो आया कि गाँव से दौड़ आए। पता नहीं क्यों आते ही मैंने तुम्हें छटा घटक ही दिया। पता नहीं क्यों चार पाँच दिनों के बाद ही तुम्हारी गाड़ी खड़–खड़ करने के बाद सरपट गति से भागने लगी और पता नहीं क्यों तुम अचानक मेरे अद्वितीय और विशाल कुटुम्ब में आकर शामिल हो गए।

कारणों का हमें पता नहीं, अत: यह कह छुटकारा पाते हैं– ऐसा होना ही था – कुदरत को यही मंजूर था। कुदरत ने ही विवश बनाकर हमें मिला दिया, पर कुदरत ने तुम्हें ही क्यों छांटा जब असंख्य लोग अब भी हमारे समाज में हैं जो संघ को जानते तक नहीं। यह मात्र संयोग नहीं था। यह पूर्व जन्मों की पहचान और अतिमानसिक संस्कार है, जो हमें बरबस मिला डालते हैं। लगता है जैसे युगों से मिले हुए थे।

जाति, आयु और भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण कर वह कौनसा आकर्षण था, जिसने तुम्हें हमारी ओर आकृष्ट ही नहीं किया, हमारा अंतरंग सखा भी बना डाला! नि:सन्देह युग–युग से हम साथ रहे, युग–युग से मानव जागरण में हमने पारस्परिक सहयोग प्रदान किया। अनेकताओं और विविधताओं में रहकर भी हमने अभंग एकता का रसास्वादन किया है। भूली हुई युगों की स्मृति आज ताजी हुई और हमने एक दूसरे को अपनी बाहों में पाया। क्या यह बधाई का अवसर नहीं है? क्या तुम्हारे और मेरे लिए जीवन का यह अविस्मरणीय अवसर नहीं है? क्या तुम्हारा और मेरा मिलन समाज के लिए एक अविस्मरणीय घटना नहीं बनेगी।

बनेगी–अवश्य बनेगी। इसीलिए बधाई के इस अवसर पर तुम्हें कुछ आगे के लिए भी बातें बता दूँ। ता. ......उपलब्धि नहीं है, उपलब्धि के लिए योग्य और सक्षम व्यक्तियों का चयन मात्र है। साधना की यह पराकाष्ठा नहीं प्रारम्भ है। मंगल यात्रा और तपोमय जीवन की संध्या नहीं, प्रभात है।

प्रभात है, इसीलिए पूर्व दिशा की ओर देखो। क्या यह उजाला हमें जागृति का संदेश नहीं देता? इसीलिए तुम्हारा पहला काम होगा–जागते रहो– चोकस रहो। असावधानी और प्रमाद में किसी अवसर को हाथ से न जाने दो।

जागृत होकर देखो कि तुम्हें क्या करना है? क्या तुम्हारे सहयोग की कहीं मांग है? क्या तुम्हारे लिए किसी

(शेष पृष्ठ 34 पर)

चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी

– संकलन : विरेन्द्र सिंह तलावदा

मेवाड़ की इतिहास प्रसिद्ध पद्मिनी जैसलमेर के रावल पूनपालजी, जिन्हें सन् 1276 ई. में वहाँ से निर्वासित कर दिया था और जिन्हें अपना शेष जीवन मरुस्थल की वीरानी में बिताने के लिए बाध्य होना पड़ा, की राजकुमारी थी। इन्हीं के पड़पौत्र राव रणकदेव ने सन् 1380 ई. में थोरियों से पूगल जीतकर भाटियों का एक नया स्वायत्तशासी राज्य स्थापित किया। ढोला-मारू के इतिहास प्रसिद्ध प्रेमाख्यान की नायिका, मरवाणी भी पूगल के पाहू भाटियों की राजकुमारी थी। समय व्यतीत होने के साथ 'पूगल री पद्मिनी' दिव्य सौंदर्य का पर्यायवाची बन गईं और पूगल क्षेत्र के भाटियों की सभी बेटियों की सामान्य पदवी 'पूगल री पद्मिनी' हो गईं। आज भी यह परम्परा यथावत है।

यह एक सुप्रसिद्ध तथ्य था कि पूगल संभाग की कन्याएँ बहुत सुन्दर, लुभावनी, व्यवहार कुशल, सुडोल एवं सुगठित देह और तीखे नाक-नक्श वाली होती थीं। जहाँ विवाह के पश्चात् नए घर की यथा कला व्यवस्था करने में वह चतुर होती थी, वहाँ उनमें पति का अगाध प्यार प्राप्त करने की कुशलता के साथ-साथ वह पूरे परिवार को स्नेहपाश में बाँध लेती थीं और परिवारजन भी बदले में उससे भी अधिक स्नेह देते थे। पानी की कमी, साधनों का अभाव, जीवन के लिए जीवट से, संघर्ष से उनमें मितव्यतता, भाग्यवादिता और निर्भीकता के गुण आत्मसात् होते थे।

अगर हम प्राचीन इतिहास, काव्य और साहित्य पर दृष्टि डालें तो पाएँगें कि रानी पद्मिनी के माता-पिता और उनकी जाति व कुल को अनावश्यक विवाद का विषय बना दिया गया। मेवाड़ की रानी के जीवंत की यथार्थता पर सभी सहमत थे परतु कोई भी राजपूत जाति उसे अपनी बेटी मानने को उद्यत नहीं हुई, क्योंकि सभी अपनी स्वनिर्मित हीनभावना के कारण उसकी सुन्दरता व नाम से अकारण घबराते थे। उनके अन्त:करण में कहीं यह गहरी भावना पैठी हुई थी कि ऐसी पद्मिनी पूगल के सिवाय और कहीं की कैसे हो सकती थीं! पूगल के भाटियों की विवशता यह थी कि कुल मिलाकर यह अनपढ़ थे। उनका अपना लिखित कोई इतिहास नहीं था और परिस्थितिवश उन्होंने अपने आपको रेगिस्तान के सुरक्षात्मक कवच के एकान्त में समेट लिया था। कोई भी उनके निश्चित मौखिक कथन पर विश्वास करने या ध्यान देने को तत्पर नहीं होता था। उन्हें वो लिखित प्रमाण, चाहे वह सरासर मिथ्या ही क्यों न हो, चाहिए। ऐसा कौनसा अभागा वंश होगा जो पद्मिनी बेटी जैसी दिव्य शोभा, गुणों की खान और बलिदान की प्रतिमूर्ति को अपनी पैतृक वंश-परम्परा में जोड़कर गौरवान्वित नहीं होगा। पूगल के इतिहास से अल्प परिचित, अनभिज्ञ इतिहासकारों ने पद्मिनी को कहीं न कहीं अपनी पसन्द की खाँप या जाति की उपयोज्यता बना दी और अगर संयोगवश वह उसके वंश और खानदान की सही पहचान करने में सफल नहीं हुए तो उन्होंने उसके अस्तित्व पर पूर्ण विराम लगाकर इतिश्री कर दी।

तवारिख जैसलमेर और जैसलमेर रो ख्यात के अनुसार रावल पूनपालजी के तीन रानियाँ थीं (1) पहली पैपकँवर पड़िहारजी, यह बेलवा के राणा उदयराज की पुत्री थीं, इनसे लखमसी और भोजदेव, दो राजकुमार हुए। पूगलिया के पुंगली भाटी भोजदेव के वशज हैं। (2) सिरोही की रानी जामकँवर देवड़ी, इनके चरड़ा और लूणराव दो राजकुमार थे। इनके वंशज चरड़ा और लूणराव भाटी हैं। इन रानी की पुत्री राजकुमारी पद्मिनी थीं। (3) थार-पारकर के राणा राजपाल की पुत्री सोढी रानी। इनके पुत्र रणधीर के वंशज रणधीरोत भाटी हैं।

पूनपालजी द्वारा सन् 1276 ई .में जैसलमेर त्यागने

के पश्चात् उनकी रानी जामकँवर देवड़ी (चौहान) के 1285 ई. में राजकुमारी पद्मिनी ने जन्म लिया। इनका विवाह चितौड़ के रावल रतनसिंह के साथ हुआ था। रानी जामकंवर देवड़ी नाडौल से जालौर आए देवड़ों की पुत्री थीं, जालौर के चौहान शासकों का विस्तृत राज्य था। जामकँवर देवड़ी के पिता वर्तमान सिरोही क्षेत्र के जालौर राज्य के सामंत थे।

राजपूत वंशावली, पृष्ठ 151, ठा. ईश्वरसिंह मडाढ़। देवड़ा चौहानों की दो शाखाएँ हैं। सांभर के शासक वाक्पतिराज (प्रथम) के पुत्र राव लखण ने नाडौल का चौहान राज्य स्थापित किया था। राव लखण से तेरहवीं पीढ़ी के शासक राव आसराज की रानी को उनके उच्च आचरण के कारण 'देवी' कहा जाता था। इस रानी से राव आसराज के पुत्रों के वंशज नाडौल के देवड़ा कहलाए।

''जायसी ग्रंथवली, पृष्ठ 24, पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने रानी पद्मिनी के पति का नाम रतनसिंह (या रतनसेन) दिया है, यही नाम आइन-ई-अकबरी में दिया गया है। कवि जायसी ने भी शासक का नाम रतनसिंह दिया है। पंडित शुक्ल के अनुसार (वर्तमान) राजपूताना या समीप के गुजरात में 'सिंघल' नाम का छोटा राज्य होना चाहिए था। सिरोही राजस्थान और गुजरात की सीमा पर है। श्रीलंका में चौहानों का कोई उपनिवेश नहीं था। श्रीलंका के निवासी कभी गोरे नहीं होते थे इसलिए राजकुमारी पद्मिनी जैसी गोरी कन्या वहाँ की संतान नहीं हो सकती। सिंघल द्वीप और वहाँ की पद्मिनी केवल गोरखपंथी साधुओं की कल्पित कथा है।

'सोनगरा सांचोरा चौहानों का इतिहास', पृष्ठ 45, डॉ. हुकमसिंह भाटी, गोरा बादल जालौर के सोनगरा चौहान थे। गोरा, बादल के चाचा थे। चित्तौड़ आने से पहले यह गुजरात के शासक, बीसलदेव सोलंकी के प्रधान थे। इनकी भानजी का विवाह चित्तौड़ होने के बाद इनके मामा गोरा और ममेरा भाई बादल, सोलंकियों की सेवा छोड़कर चित्तौड़ आ गए थे।

विद्वान पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने थोड़ी भूल कर दी है। रानी जामकँवर देवड़ी, देवड़ा चौहानों के अधीन राजस्थान से लगती गुजरात सीमा में सिंहलवाड़ा संभाग की थीं। रानी जामकँवर देवड़ी के भाई गोरा, रानी पद्मिनी के मामा थे और बादल उनके ममेरा भाई। क्योंकि गोरा और बादल रानी पद्मिनी के ननिहाल से थे, इसलिए सन् 1303 ई. के चित्तौड़ के जौहर से पहले उन्होंने मर्यादा सम्बन्धी मार्गदर्शन अपने ननिहाल पक्ष से भी लिया था।

उपरोक्त प्रकाशन के पृष्ठ 58, 'चित्तौड़ के तीन साके' भवानीसिंह चौहान, पूर्व देवस्थान कमिश्नर, 'चित्तौड़ की गद्दी पर रावल' रतनसिंह (प्रथम) उर्फ भीमसिंह के सन् 1302 ई. में गद्दी पर बैठने के बाद इनका विवाह पूगल की चौहान राजकुमारी परम-सुन्दरी पद्मिनी के साथ हुआ। (वस्तुतः पद्मिनी पूगल के भाटियों की बेटी और सिरोही के देवड़ा चौहानों की भानजी थीं)। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि पूगल या इसके आसपास कभी भी चौहानों का राज्य नहीं रहा था और न ही चौहान वहाँ कभी बसते थे।

पद्मिनी या पदमावती के साथ इसका चाचा गोरा और गोरा का भतीजा बादल चौहान भी चित्तौड़ आए और रावल रतनसिंह की सेवा में रह गए। यह जौहर 23 मार्च, सन् 1303 के दिन हुआ था। महाराणा कुम्भा के महलों के पास पश्चिम में महारानी पद्मिनी के जौहर का स्थान है। इसके अलावा पद्मिनी के महल व जलमहल हैं। (गोरा, पद्मिनी का चाचा नहीं मामा थे।)

धर जाताँ, धरम पलटताँ, तिरया पड़न्ताँ ताव।
एह तीन दिवस मरण रा, काँई रंक काँई राव।।

नाड़ौल के देवड़ा गुजरात के सोलंकी शासकों के प्रधान सामंत थे और लम्बे समय तक उनकी सेना में रहे। आसराज चौहान के इन देवड़ा वंशजों के पास 'सिंहलवाड़ा' को कल्पना से सिंहल द्वीप की संज्ञा देकर अर्थ का अनर्थ कर दिया। सम्भवतः पूर्वी भारत में दूर बैठे जायसी को उस काल में सिंहलवाड़ा के अस्तित्व का बोध तक नहीं था। उन्होंने पद्मिनी और सिंहल देश का नाम सुनकर या कहीं पढ़कर सिंहल द्वीप की उड़ान भर ली और

इसी भ्रम में मौज से पदमावत काव्य की भूमिका बुनकर ऐतिहासिक काव्य की रचना कर डाली। कवि के भ्रमात्मक आधार ने पद्मिनी के सही अस्तित्व को सदियों तक उलझाए रखा।

वस्तुस्थिति यह रही कि राव पूनपालजी की रानी जामकँवर देवड़ी सिंहलवाड़ा के राजा हमीरसिह देवड़ा की पुत्री थी। इनके राजकुमारी पद्मिनी हुई, जिनका विवाह मेवाड़ के रावल रतनसिंह के साथ हुआ। हमीर देवड़ा पद्मिनी के नाना थे। पद्मिनी के मामा गोरा चौहान और इनका भतीजा बादल, पहले गुजरात के सोलंकी शासकों की सेवा में थे, अपनी भानजी का विवाह मेवाड़ हो जाने के बाद वह गुजरात की सेवा छोड़कर मेवाड़ के रावल की सेवा में चित्तौड़ आ गए। राजपूतों में यह परम्परा थी कि बहन या बेटी के पास पीहर और ननिहाल पक्ष से सरदार, पुरोहित व सेवक, सेविकाएँ अवश्य रहते थे ताकि नए घर में पीहर के विछोह में बेटी उदास नहीं रहे। निकट के यह सम्बन्धी उसके पीहर की मान-मर्यादा से उसे अवगत कराते रहते थे और संकट की घड़ी में उसका साथ देते थे।

भाटी और मेवाड़ी एक-दूसरे से अनजान नहीं थे, प्राचीनकाल से इनके आपस में वैवाहिक सम्बन्ध होते आए थे। रावल सिद्ध देवराज का एक विवाह राव सूरजमल गहलोत की राजकुमारी सूरजकँवर से, रावल मुधजी का विवाह रावल अड़सी जी की राजकँवर से, रावल विजयराव लांझा का रावल करण समसीजियोत की राजकुमारी शिवकँवर से, रावल शालिवाहन का रावल जयसिंह की राजकुमारी राजकँवर से हुआ था। मेवाड के प्रथम राणा राहुप, पूगल की पाहू भाटी राजकुमारी रणकदेवी के पुत्र थे, राव रिडमल राठौड का एक विवाह बीकमपुर के भाटियों के यहाँ हुआ था और उनकी बहन हंसा बाई चित्तौड के राणा लाखा को ब्याही थी, जिनके पुत्र राणा गोकल थे। इस प्रकार भाटियों और मेवाड़ियों के पीढी-दर-पीढ़ी आपस में वैवाहिक आदान-प्रदान होते आए थे। पत्नी के चुनाव का मुख्य आधार उसके गुण, सुन्दरता और खानदान होते थे, प्रमुख शासकीय जातियों के लिए वधू के पिता की समृद्धि गौण होती थी। जैसलमेर के भाटियों से मेवाड़ के वैवाहिक सम्बन्ध बाद की शताब्दियों में भी यथावत बने रहे।

राजकुमार रतनसिंह पद्मिनी जैसी उत्कृष्ट सुन्दरी के रूप में पत्नी पाकर निहाल हो गए। उन्होंने अपने शुभ-नक्षत्रों को इसके लिए बार-बार धन्यवाद दिया। किन्तु उनका अमृत-तुल्य सुख अल्पावधि का रहा। जिस दूरदर्शिता से पूनपालजी ने पूगल के मरुदेश की अमूल्य धरोहर को अल्लाउद्दीन खिलजी के गुप्तचरों व भेदियों की तीखी निगाहों से बचाकर मेवाड़ व चित्तौड़ की अभेद्य सुरक्षा प्रदान करनी चाही थी, उनकी वह कामना पूर्ण नहीं हुई। चित्तौड़ में सुल्तान खिलजी के शिविर के आस-पास, तुच्छ पुरुस्कारों के लिए मंडराते हुए भृत्यों ने रानी पद्मिनी के अदम्य रूप-लावण्य की प्रशंसा उनके सामने कर डाली। बस विनाश हो चुका। जिस नियति की आशंका पूनपालजी को चित्तौड़ से तीन सौ मील दूर पूगल में थी उसी नियती के खेल ने पद्मिनी को चित्तौड़ में रंग दिखाया। वह अट्ठारह वर्षों की नवयौवना चित्तौड के गढ़ में सन् 1303 ई. में अग्नि के बलि चढ़ गई। कहाँ मरुदेश के रेतीले शुष्क वातावरण में पली-पोसी उच्छृंखल पद्मिनी का भाग्य उसे खींचकर अरावली की घाटियों में ले गया, जहाँ वह रक्त रंजित संघर्ष का कारण बनकर स्वाह हो गई और राजपूतों व मेवाड़ के इतिहास में पूजनीय बनकर अमर हो गईं।

भाटियों को गर्व है कि पूगल की भाटी बेटी रानी पद्मिनी भटियाणी ने जीवित रहने के लिए भाटियों और गहलोतों के आत्म-सम्मान व स्वाभिमान से समझौता किए बिना हजारों क्षत्राणियों, वृद्धा व युवा का नेतृत्व करके उन्हें जौहर का, मर्यादा का मार्ग बताया। कहते हैं कि जौहर से पहले पद्मिनी ने अपने मामा गोरा और ममेरे भाई बादल से विचार-विमर्श किया था। दोनों ने मर्यादानुसार सर्वोच्च बलिदान का मार्ग चुना, एक राख बन गई, दूसरों का रक्त धरती माँ की माटी ने बीज सुरक्षित रखने के लिए सोख लिया। जितना पूगल की पद्मिनी के रूप लावण्य, साहस व बलिदान ने भारतीय वाङ्मय को प्रभावित किया है उतना

अन्य किसी ने नहीं किया। क्योंकि पद्मिनी का सौन्दर्य साधारण संग्राहक की सोच-शक्ति से परे था, इसलिए तथाकथित विद्वानों ने बिना सोचे-समझे, रुके, इसकी वंश-परम्परा को कहीं भी किसी के यहाँ, टांककर, एक गौरवमय इतिहास की इतिश्री कर दी। उनके लिए पूगल इतना समीप का साधारण पड़ोसी था कि वह पद्मिनी जैसी असाधारण रानी की जन्मभूमि हो ही नहीं सकती थी। अज्ञान, ईर्ष्या, जनश्रुति आदि कारणों से बाध्य होकर विद्वानों और अज्ञानियों ने पद्मिनी को ऐसी दूर जगह स्थापित करके संतोष किया, जिसे किसी ने कभी देखा तक नहीं था, केवल उसकी स्तुति रामायण में सुनी थी।

यहाँ यह बताना सामयिक होगा कि रानी पद्मिनी से सौ साल पहले पूगल के ही पाहू भाटियों की बेटी रानी रणकदेवी मेवाड़ के प्रथम सिसोदिया राणा, राणा राहुप, की माता थी।

पूगल क्षेत्र की सभी सुन्दर कुमारियों को पद्मिनी के नाम से सम्बोधित किया जाता था, उनका असली नाम चाहे कुछ और ही होता था। पद्मिनी जातिवाचक संज्ञा थी, न कि व्यक्तिवाचक।

मंडोर के बाऊक प्रतिहार शासक की भटियाणी माता को सम्मान से 'पद्मिनी' कहते थे। उनका असली नाम पद्मिनी नहीं था।

इतिहास के अभाव में लोगों ने 'पदमावत' को ऐतिहासिक पुस्तक मान लिया, परन्तु वास्तव में वह आजकल के ऐतिहासिक उपन्यासों जैसी कविताबद्ध कथा है, जिसका कलेवर इन ऐतिहासिक बातों पर रचा गया है कि रतनसेन (रतनसिंह) चित्तौड़गढ़ का राजा पद्मिनी या पदमावती उसकी राणी और अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली का सुल्तान था, जिसने रतनसेन (रतनसिंह) से लड़कर चितौड़ का किला छिना था। बहुधा अन्यभव बातें कथा को रोचक बनाने के लिये कल्पित खड़ी की गई हैं।

रावल समरसिंह के बाद उसका पुत्र रतनसिंह चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा। पद्मिनी रत्नसिंह की मुख्य रानी थी। पद्मिनी अपूर्व सुन्दर थी। उसकी सुन्दरता की ख्याती दूर-दूर तक फैल चुकी थी। अलाउद्दीन पद्मिनी जैसी अनिद्य सुन्दरी को प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठा। चित्तौड़ पर आक्रमण कर दुर्ग को घेर लिया। पर लम्बे समय तक घेरा डाले रहने के बाद भी दुर्ग पर अधिपत्य जमाने में सफल नहीं हो सका। अलाउद्दीन खिलजी ने देखा राजपूत सैनिकों के अदम्य सहास और वीरता के आगे उसका बस नहीं चल सकता अतः उसने कूटनीति से काम लेने की सोची। छः माह तक किले का घेरा रखने पर भी चित्तौड़ किले में प्रवेश नहीं कर पाया तब उसने संधि प्रस्ताव के बहाने किले में प्रवेश किया। रावल रतनसिंह अतिथि सत्कार की परम्परा को निभाने के लिए किले से बाहर तक आये। रावल रतनसिंह को बंदी बना लिया गया तब महाराणी पद्मिनी के मामा गौरा चौहान भाई बादल ने युद्ध कर रावल रतनसिंह को छुड़ा लिया तब अलाउद्दीन खिलजी तिलमिला उठा, कुछ ही समय पश्चात् चित्तौड़ पर दुबारा हमला किया। तब वीर राजपूत केसरिया बाना पहनकर निकल आये, राजपूतों की तलवार-भवानी ने सैकड़ों के सिर धड़ से अलग कर दिये। रावल रतनसिंह युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। उधर राजपूतानियों ने भी साहस के साथ पद्मिनी की अध्यक्षता में अपने कर्तव्य का पालन किया। पद्मिनी ने जौहर यज्ञ किया।

पद्मिनी की अनुमति से चित्तौड़ की राजपूत की वीरांगनाओं ने मिलकर एक सूखे विशाल कुण्ड में चिता जला दी। अग्नि की शिखाएं 'शत्-शत् जिह्वा' निकालकर आकाश-पथ को चूमने लगी। पद्मिनी ने उन रणांगनाओं से कहा 'बहिनों'। आज हम सब आर्य नारियों की मर्यादा-रक्षा के लिये, पवित्र सती धर्म की रक्षा के लिये और देश का मुख उज्ज्वल रखने के लिये अग्नि देवता को अपने शरीर को समर्पण कर रही हैं। भगवान भी आँख खोलकर देख लेंगे कि हमारे हृदय में कितना आत्मबल और धर्मबल है।

सहस्रों स्त्रियाँ अग्निकुण्ड में कूद पड़ी, देखते-ही-देखते सब कुछ स्वाहा हो गया। अपने कुल गौरव के लिये अग्नि में समा गयी। ●

माँ का दूध क्यों लजाऊँ

– युधिष्ठिर

प्रण का परिणाम मौत है। लोग जीवन को चुनते हैं। जिस-जिसने प्रण लिया वो एक भी नहीं बचा। जीवन के रंगों को आग लगानी पड़ती है। मधुर संबंधों पर कफन डालना पड़ता है। प्रण जीवन का जाता है और जीवन की मृत्यु हो जाती है।

हाथी भी किले का दरवाजा तब तोड़ सकता है जब टक्कर देने वाली छाती किसी इंसान की हो। बहादुरों की बहादुरी का क्षत्रियों ने मजाक उड़ाया। विश्व में राजपूतों के अलावा कहीं ऐसा उदाहरण मिले तो बताना जब सिर से किसी ने किले के दरवाजे को उछाल दिया। मौत अवश्यंभावी है पर प्रण पर प्राण देने का कलेजा कहाँ से लाएं।

धनजी-भीमजी मामा-भानजे थे। पाली के ठाकुर मुकन्द सिंह चांपावत का शिविर लगा हुआ था। करीब सो सवा सौ लोग उस शिविर में थे। शिविर से कुछ लोग आखेट के लिए निकले थे। बहुत प्रयास करने पर भी उन्हें शिकार नहीं मिला। वापिस आते वक्त एवड़ में एक हस्ट-पुष्ट बाघी बकरे को देखा। वे बकरे को एवड़ से शिविर में ले आये।

थोड़ी ही देर बाद धनजी-भीमजी भी वहाँ आ गए। ग्वाले ने रोते हुए बताया कि बड़े बकरे को जबरन ले गये। दूसरे ग्वाले से पता चला कि पास ही में ठाकुर का शिविर है वहीं लेकर गए हैं। धनजी-भीमजी सीधे शिविर में पहुँचे। पेड़ पर टाँग कर बकरे की खाल निकाली जा रही थी। धनजी-भीमजी ने लोगों को धक्का देकर गिराया और बकरे को खुरे मुंडी सहित एक हल्की-सी चीज की तरह उठाकर ले गए। वहाँ उपस्थित किसी में भी उन्हें रोकने और कहने का साहस नहीं हुआ। ठाकुर मुकन्द सिंह भी ये सब देख रहे थे। उन्होंने सोचा, मेरे ये सौ आदमी किस काम के जो दो आदमी को नहीं रोक सके। ठाकुर ने कहा-

''पता लगाओ ये दोनों कौन हैं?''

''ये धनजी-भीमजी हैं। पास ही के गाँव में रहते हैं। बकरा भी इन्हीं के एवड़ का था।''

फिर क्या था, ठाकुर घोड़े पर सवार होकर बिना किसी को साथ लिए उस गाँव की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचने पर उनका ससम्मान स्वागत किया गया। भोजन की मनुहार की गई। वे बार-बार भोजन के लिए मना कर रहे थे। धनजी-भीमजी में से किसी ने बकरे की बात नहीं की। थोड़ी देर बाद ठाकुर साहब बोले –

''मेरे शिविर से कुछ लोग आखेट के लिए निकले थे और बकरे को पकड़कर ले गये। ये उन लोगों की गलती थी। मैं आपसे इसके लिए माफी माँगता हूँ।''

'' बकरा क्या चीज है। आपके हुक्म पर पूरा एवड़ हाजिर है। पर ले जाने से पूर्व हमसे पूछना चाहिए था।'' धनजी ने कहा।

धनजी ने अपने काम आवे उतना माँस रखकर शेष मास (बकरे) को शिविर में पहुँचा दिया। इस बात की खबर उन्होंने ठाकुर को नहीं पड़ने दी। ठाकुर मुकन्द सिंह भीमजी की माताजी के कहने पर रूक तो गये लेकिन अभी तक खाने के लिए हाँ नहीं भरी।

खाना तैयार हो गया। थाल हाजिर किया गया। लेकिन ठाकुर साहब ने पुनः खाने के लिए मना कर दिया। सबने प्रयास कर लिए पर वो हाँ भर ही नहीं रहे थे। अन्त में भीमजी की माताजी ने कहा खाना तो खाना ही पड़ेगा। तब ठाकुर साहब ने कहा-

''मैं खाना तो खा लूँगा पर मेरी एक शर्त है।''

''कैसी शर्त'' -भीमजी की माताजी ने पूछा।

''इन दोनों को मुझे दे दो। जोधपुर दरबार मेरे से रुष्ट हैं। मेरी जान को खतरा है। मुझे ऐसे ही निडर और बहादुर अंग रक्षकों की जरूरत है।''

''मैं जबान देती हूँ ये जीते जी आपकी रक्षा करेंगे। लेकिन आपको भी मेरी एक बात माननी पड़ेगी। इनको लिए बगैर आप कहीं नहीं जाओगे।''

''मुझे यह शर्त मंजूर है।''

फिर प्रसन्नता पूर्वक भोजन किया गया। प्रस्थान के समय धनजी-भीमजी साथ हो गए। जोधपुर दरबार ने अनेक गुप्त प्रयास किये पर धनजी-भीमजी के रहते सफलता नहीं मिल रही थी। गुप्तचरों ने भी यही रिपोर्ट दी, धनजी-भीमजी के रहते कोई षड़यंत्र सफल नहीं हो सकता। प्रतापसिंह ने कहा-

''अगर किसी तरह धनजी-भीमजी को अलग कर दिया जाए और ठाकुर को यहाँ बुला लिया जाए तो मैं खत्म कर सकता हूँ।''

''ठाकुर साहब! ठाकुर साहब! भीमजी की माताजी बहुत अस्वस्थ हैं। एक बार धनजी-भीमजी से मिलना चाहते हैं।''

''भीमजी! तुम्हारी माताजी का हमारे ऊपर कर्ज है। आखिर उन्होंने ही आप दोनों को हमें सौंपा है। एक बार उनसे मिल आओ।''

भीमजी के माताजी बिमार अवश्य थे लेकिन उन्होंने उन्हें बुलाया नहीं था।

'' ये तुम दोनों ने क्या कर दिया। मैंने तुम्हें नहीं बुलाया था। ये दरबार का कोई षड़यंत्र है। ठाकुर साहब की जान को खतरा है। मेरे और मेरे माताजी के दूध को कलंकित होने से बचाओ। दूध की लाज रखना। शीघ्र वापिस जाओ।''

गुप्तचर विभाग सक्रिय था। धनजी-भीमजी के बाहर होने की सूचना किले में पहुँच गई।

''आपको किले में बुलया गया है।''

''दरबार ने आपको शीघ्र ही बुलाया है।'' ठाकुर अकेले बाहर न जाने हेतु वचनबद्ध थे। लेकिन कुछ देर बाद-

''आप पाँच मिनट में वापिस पधार जाना।'' ठाकुर साइब खट्टे दिल से उनके साथ चले गए। प्रतापसिंह पहले से इसी इंतजार में थे। अन्दर पहुँचते ही उन्होंने ठाकुर साहब को मार दिया।

धनजी-भीमजी जब लौटे तो उन्हें पता चला कि ठाकुर साहब को किसी जरूरी काम का बुलावा महल से आया था। अब उनको चैन कहाँ। खतरे की आंतरिक बात वे जानते थे। उन्हें पता था अनहोनी हो गई है। उन्होंने शीघ्र ही मेहरानगढ़ (किले) की ओर कूच किया। उन्हें यह भी सूचना मिल चुकी थी कि प्रतापसिंह ने धोखे से ठाकुर साहब को मारा है। दोनों ही तिलमिला उठे और उनके अन्दर बदले की अग्नि भभक उठी। अब क्रोध सातवें आसमान पर था। आगे जाकर देखा तो किले के द्वार बंद थे। बिना दरवाजा तोड़े अन्दर प्रवेश नहीं हो सकता था। पश्चाताप की अग्नि ने धनजी के कलेजे को छलनी कर दिया। धनजी ने सिर के मण्डासा बाँधकर पीछे से वेग से दौड़कर सिर की टक्कर किवाड़ों को दे दी। किवांड़ टूट गए। धनजी का सिर बिखर गया। लेकिन भीमजी के लिए रास्ता साफ हो गया।

मामा बलिवेदी पर झूल गए। पर भानजे की अग्नि परीक्षा अभी बाकी थी।

भीमजी के कान में अपनी माता के शब्द गूंज रहे थे- ''मेरा दूध मत लजाना बेटा।''

भीमजी अब रौद्र रूप धारण कर चुके थे। भीमजी ने किले में प्रवेश किया। अनेकों रक्षकों को चीरते हुए प्रताप सिंह तक पहुँच गए। रक्षकों की बोटी-बोटी नोच खाई। प्रताप सिंह का सिर धड़ से अलग कर दिया। स्वामिभक्ति की अनोखी मिसाल स्थापित कर दी। बहादुरी, वीरता और हिम्मत अपने पराकाष्ठा पर पहुँच गई। माँ के दूध की लाज रखी।

आधी रात को ठाकुर साहब मुकन्दसिंह जी के महल (हवेली) में रुदन सुनाई पड़ा। भींवजी ने अपने स्वामी का बदला ले प्रतापसिंह जी के महल में भी प्रात:काल रुदन शुरू करवा दिया।

न्याय के बदले न्याय करने वाला उज्ज्वल व शुद्ध रक्त केवल क्षत्रिय के रगों में ही दौड़ा करता है।

गतांक से आगे

बीकानेर रियासत का संक्षिप्त इतिहास

– खींवसिंह सुलताना

महाराजा सूरत सिंह

महाराजा सूरत सिंह का जन्म वि.सं. 1822 में हुआ था वह वि.सं. 1844 को बीकानेर का शासक बना।

भट्टियों से लडाई :– बीकानेर राज्य की सीमा पर भट्टियों ने उत्पात मचा रखा था। इस पर महाराजा ने भटनेर पर रावतसर के रावत बहादुर सिंह, भूकरका के ठाकुर मदन सिंह, जैतपुर के ठाकुर पदम सिंह आदि सरदारों के अधीन 2000 की सेना भेजी। इस सेना के पहुँचने की खबर पाकर जाब्तखाँ (भट्टियों का सरदार) 7000 फौज के साथ इनका सामना करने आया। भट्टियों की फौज रात भर धावा बोलते और दिन में डबली चले जाते, जिससे राठौड़ों को दम भरने का समय भी नहीं मिलता। इस पर बीकानेर की सेना ने रसद लाने के बहाने कुछ सेना को भेजा, जिस पर भट्टियों ने आक्रमण किया इसी समय बीकानेर की शेष सेना ने उन पर प्रबल वेग से आक्रमण किया। कुछ समय की भीषण लड़ाई के बाद विजय बीकानेर की हुई, विजय के फलस्वरूप वहीं बीगोर में फतहगढ़ नामक गढ़ का निमार्ण किया गया।

जयपुर की सहायता करना :– राजपूताने की अधिकांश रियासतों में इस समय मराठे दखल देने लग गये थे। वि.सं. 1856 में मराठों का एक सेनानायक बामनराव जयपुर पर आक्रमण के लिए आया, साथ ही वामनराव ने एक अंग्रेज लूटेरे जार्ज थामस को भी इस अभियान में शामिल कर लिया। फतहपुर के नजदीक जयपुर की सेना व विरोधी पक्ष में युद्ध हुआ जिसमें जयपुर की सेना को पीछे हटना पड़ा। इसी समय महाराजा सूरत सिंह द्वारा जयपुर की सहायतार्थ भेजी गई सेना के आ जाने से जयपुर का पलड़ा भारी हो गया व शत्रु सेना को मैदान से भागना पड़ा, भागती शत्रु सेना का जयपुर–बीकानेर की सम्मिलित सेना ने पीछा किया और उसे भारी नुक्सान पहुँचाया।

भटनेर से भट्टियों को निकालना :– अभी भट्टियों का झगड़ा शान्त नहीं हुआ था। कभी–कभी वे विद्रोह कर दिया करते व उत्पात मचाते। वि.सं. 1861 में अमरचंद की अध्यक्षता में 4000 सेना भटनेर भेजी गई। वहाँ भट्टियों ने गढ़ के दरवाजे बंद कर अंदर से मोर्चा बांध लिया। छिट–पुट मुठभेड़ों से कुछ नहीं हो पा रहा था अतः गढ़ के चारों ओर भारी पहरा लगा कर रसद का आवागमन बंद कर दिया गया। ऐसी परिस्थिति में जाब्त खाँ ने संधि की प्रार्थना की और सुरक्षित जाने देने का वचन बीकानेर से ले गढ़ को खाली कर दिया। वि.सं. 1862 में गढ़ पर बीकानेर का अधिकार हो गया। उस दिन मंगलवार होने से गढ़ का नाम हनुमानगढ़ रख दिया गया।

जोधपुर के महाराजा मानसिंह पर चढ़ाई :– जोधपुर के शासक भीमसिंह की मृत्यु के बाद उनका चचेरा भाई मानसिंह जो जालौर था, जोधपुर आ गया। भीमसिंह की मृत्यु के समय उनकी देरावरी रानी गर्भवती थी। पोकरण के ठाकुर सवाई सिंह व अन्य सरदारों को मानसिंह ने यह वचन दिया कि यदि रानी के गर्भ से पुत्र हुआ तो वह मेरा व जोधपुर का स्वामी होगा। मानसिंह की कुबुद्धि को ध्यान में रखकर सवाई सिंह ने देरावरी रानी के पुत्र (जिसका नाम धोंकल सिंह रखा गया) होते ही नवजात शिशु को खेतड़ी भिजवा दिया। जब मानसिंह को इस बात का पता लगा तो उसने सवाई सिंह को मरवाने का प्रयास किया, सवाई सिंह वहाँ से जयपुर जगत सिंह के पास चला गया। उसने जगत सिंह से धोंकल सिंह की सहायता करने की प्रार्थना की। जगतसिंह की सलाह से सवाई सिंह ने सूरत सिंह से भी

सहायता की प्रार्थना की। जयपुर व बीकानेर की सम्मिलित सेना मीठड़ी पहुँची। जोधपुर की सेना भी गींगोली आ गई। दोनों पक्षों के मध्य गींगोली का युद्ध हुआ जिसमें जोधपुर की सेना की पराजय हुई व मानसिंह को प्राण बचा कर जोधपुर की ओर भागना पड़ा।

चूरू पर बीकानेर का अधिकार होना :– चूरू के स्वामी शिव सिंह ने पेशकशी के रुपये नहीं चुकाए थे अतः वि.सं. 1871 में सूरत सिंह ने अमरचन्द को ससैन्य चूरू भेजा। अमरचन्द ने गढ़ को घेर कर उस पर तोपों की मार की तथा साथ ही निगरानी तेज कर दी। अतः ठाकुर शिव सिंह ने सीकर आदमी भेजकर रसद मंगवाई, जिस पर राव राजा लक्ष्मण सिंह ने अपने आदमियों के साथ रसद का सामान भिजवाया। चूरू के आदमी जब सामान लेने बाहर आए तब बीकानेर व चूरू के मध्य भीषण युद्ध हुआ जिसमें बीकानेर वालों की विजय हुई। इसी दौरान ठाकुर शिव सिंह का अचानक देहान्त हो गया। तब खेतड़ी के ठाकुर अभयसिंह द्वारा जीवन रक्षा का वचन पाकर शिव सिंह का पुत्र पृथ्वी सिंह सकुटुम्ब जोधपुर चला गया और गढ़ पर बीकानेर वालों का अधिकार हो गया।

महाराजा की अंग्रेज सरकार से संधि :– इस समय तक ब्रिटिश सरकार का प्रभुत्व सारे देश में फैल चुका था। राज्य के भीतर विद्रोही सरदार व बाहर पड़ोसी रियासतें शासन व्यवस्था को क्षीण कर रही थी। इन परिस्थितियों में वि.सं. 1874 में महाराजा सूरत सिंह व अग्रेजों में संधि हुई ।

मृत्यु :– वि.सं. 1885 में महाराजा सूरत सिंह का देहांत हो गया। महाराजा सूरत सिंह बड़ा वीर नीतिवेता और न्यायप्रिय था। वह शत्रु पर छुपकर वार करने के विरोधी था लेकिन महाराजा जल्दी ही बातों में आ जाते थे और उनकी इसी कमजोरी के कारण उन्होंने अपने वफादार अमरचन्द को मरवा दिया था।

महाराजा रतन सिंह

जन्म :– महाराजा रतन सिंह का जन्म वि.सं. 1847 में हुआ था और वि.सं 1885 में वह बीकानेर के शासक बने।

जैसलमेर पर चढ़ाई :– वि.सं. 1886 में जैसलमेर के कुछ भाटी बीकानेर के सरकारी सांडों का टोला पकड़ ले गए। तब बीकानेर से महाजन के ठाकुर वैरिशाल, मेहता अभय सिहं को 3000 की फौज के साथ जैसलमेर की ओर भेजा। उधर जैसलमेर की सेना भी सामना करने के लिए आगे आई। वासणपी गाँव के पास युद्ध हुआ। जैसलमेर की सैन्य शक्ति युद्ध में अधिक होने के कारण विजयलक्ष्मी ने जैसलमेर का वरण किया। बीकानेर द्वारा किया गया यह आक्रमण अंग्रेजों से संधि का उल्लंघन था। अतः ब्रिटिश सरकार ने उदयपुर महाराणा को मध्यस्थ बनाकर, दोनों राज्यों में मेल करवा दिया।

महाजन के इलाके पर आधिकार करना :– महाजन के ठाकुर वैरिशाल ने अपने इलाके में डाकुओं को आश्रय दे रखा था जो बीकानेर के इलाकों में लूटपाट किया करते थे इस पर महराजा रतन सिंह ने सुराणा हुकमचंद को सेना सहित भेजा। ठाकुर वैरिशाल टीबी गाँव में चला गया, उसके पुत्रों ने तीन दिनों तक बीकानेर की सेना का सामना किया, परन्तु अंत में उन्होंने किला बीकानेर की सेना को सौंप दिया। अपने अपराधों की माफी मांगकर वैरिशाल भी राज्य की सेवा में आ गया। लेकिन कुछ समय बाद वह फिर से विद्रोह कर जैसलमेर के रावल गजसिंह व पूगल के राव राम सिंह की सहायता से बीकानेर में लूटपाट करने लगा। महाराजा स्वयं चूरू के ठाकुर पृथ्वी सिंह, मघरासर के हरनाथ सिंह आदि के साथ विद्रोही के विरुद्ध सेना लेकर गए। थोड़े संघर्ष के बाद पूगल वालों ने आत्मसमर्पण कर दिया। शीघ्र ही विद्रोहियों को कुचल दिया गया।

(शेष पृष्ठ 17 पर)

जौहर एवं शाका किसे कहते हैं?

– संकलन : विरेन्द्र सिंह तलावदा

चित्तौड़ दुर्ग में देश, धर्म, संस्कृति व स्वतंत्रता रक्षार्थ जौहर महारावल रतनसिंह की पत्नी महाराणी पद्मिनी ने 25 अगस्त, 1303 ई. (विक्रम संवत 1360 भाद्रपद शुक्ल तेरस) को सोलह हजार क्षत्राणियों के साथ अग्नि प्रवेश किया।

राजस्थान की युद्ध परम्परा में जौहर-शाकों का अपना विशिष्ट स्थान है जहाँ पराधीनता के बजाए मृत्यु का आलिंगन करते यह स्थिति आ जाती है कि अब अधिक दिन तक शत्रु के घेरे के भीतर जीवित नहीं रहा जा सकता। तब जौहर व शाके किया जाते थे। महिलाएं कुलदेवी व देवताओं का पूजन कर तुलसीदल के साथ गंगाजल पानकर जलती हुई चिता में प्रवेश करके अपने भीतर स्वजन सूरमाओं को निर्भय करती थी कि नारी समाज की पवित्रता अब अग्नि के ताप से तपित होकर कीर्ति कुन्दन बन गई है। साहित्य इतिहास में महिलाओं के इस महाकृत्य को जौहर कहते हैं।

जौहर के बाद पुरुष इस चिंता से मुक्त हो जाते थे कि युद्ध के परिणाम का अनिष्ट राहु अब उनके सूर्य स्वजनों को ग्रसित नहीं कर सकेगा। अतः कसूंबा (अफीम का घोल) पीकर केसरिया वस्त्र धारण कर पगड़ी में तुलसीदल रखकर गले में सालिग्राम के गुटके बांधकर इस निश्चय के साथ रणक्षेत्र में उत्तर पड़ते थे कि विजयी कामनाएं ह्रदय में संजोए अंतिम दम तक लड़ते-लड़ते रणभूमि में चिरनिद्रा में लीन हो जायेंगे। राजस्थानी में पुरुषों का यह कृत्य शाका नाम से विख्यात है।

इस वसुन्धरा के अति विकसित वक्षस्थल पर क्षात्र धर्म ही ऐसा धर्म है जिसकी परम्परा में स्वेच्छा से प्रेरित होकर प्राण विसर्जन करने की घटनाएं अत्यन्त मांगलिक और शुभ समझी जाती हैं। मातृभूमि पर प्राण विसर्जन करने वाले वीर, चिता की प्रचण्ड ज्वालाओं में होम होने वाली वीरांगनाएँ क्षात्र परम्परा के अन्तर्गत ही श्रद्धा पूर्वक देखे जाते हैं।

राष्ट्रीय अस्मिता, कौमी एकता एवं मेवाड़ के शाश्वत मूल्यों के यशस्वी रचनाकार पं. नरेन्द्र मिश्र की कविता 'जौहर की ज्वाला अविनाशी' मुझे लगता है कि समाज को बहुत ही प्रेरणा देगी। जौहर के वास्तविक मूल्यों को समझ सकेंगे।

जौहर की ज्वाला अविनाशी

कुछ लोग आज आलोचक हैं, जौहर की मान् भावना के।
ये प्रबल विरोधी हैं प्रण की, उत्सर्गी मुक्ति कामना के।।

वे लोग इसे अपने युग का, नारी अपमान बताते हैं।
जल मरने को निर्दयता की, कायर पहचान बताते हैं।।

ऐसे लोगों की अस्मत ही, जालिम मुगलों के नाम हुई।
ऐसे लोगों के कारण ही, यह भारत भूमि गुलाम हुई ।।

पहले भी इन्हीं सपूतों ने, यवनों को गले लगाया था।
दाबे गैरों के पैर और, अपनों का कंठ दबाया था।।

इन लोगों ने ही मुगलों का, हौसला बुलन्द कर दिया था।
केवल मुट्ठी भर लोगों ने, मुट्ठी में बन्द कर लिया था।।

कुलटा क्या जाने जौहर के, बलिदानी अग्नि आचमन को।
क्या जाने सोच नपुंसक का, गर्वोन्नत प्राण विजर्सन को।

जो स्वाभिमान के लिये शीश, देना अपराध समझते हों।
केवल जिन्दा रहना ही जो, जीवन की साध समझते हों।।

मानवता हारी है अब तक, ऐसे ही वर्णसंकरों से।
युग धर्म पराजित होता है, कापुरुषों नीच पामरों से।।

क्या जाने लहू दासता का, जौहर व्रत की परिभाषा को।
सुविधा भोगी क्या समझेंगे, मर मिटने की अभिलाषा को।।

इतिहास खड़ा होता उन पर, जो सत् का मूल समझते हैं।
प्राणों को ऐसे लोग सदा, पैरों की धूल समझते हैं।।

सदियों से ऐसे लोगों ने, सीखा हँस कर विष पी जाना।
मर-मर कर जिन्दा रहने से, बेहतर है मरकर जी जाना।।

अगणित बलिदान हुए अब तक, यश की सम्मानित निष्ठा में।
सुकराती जहर बोलता है, हर युग की प्राण प्रतिष्ठा में।।

मेवाड़ भूमि ने तीन बार, जौहर की ज्वाला धधकाई।
चितौड दुर्ग की पटरानी, सबसे पहले आगे आई।।

ये अरावली की महिमामय, नैतिक मूल्यों की शिक्षा थी।
नारी सतीत्व के मेवाड़ी, प्रण की यह अग्नि परीक्षा थी।।

इसके बल से ही एकलिंग, की धर्म ध्वजा दुर्जेय रही।
इसके संबल से सदियों तक, मेवाड़ी भूमि अजेय रही।।

निर्णायक हार सामने थी, दुश्मन सर पर मंडराया था।
केसरिया लाज लूटने को, मुगलों ने हाथ बढ़ाया था।।

जल मरने से ज्यादा पावन, उस दिन कोई संकल्प न था।
जौहर ही शेष बचा था बस, कोई भी और विकल्प न था।।

जौहर की ज्योति न जलती तो, सम्मान खाक में मिल जाता।
राजपूती के पावन सत का, अभिमान राख में मिल जाता।।

नारी तन का अपमान बोध, माथे पर अंकित हो जाता।
गीता गायक का वह पावन, संदेश कलंकित हो जाता।।

वह एकलिंग की धरती का, सबसे अपमानित क्षण होता।
जब माँ बहनों की अस्मत का, मुगलों से चीर हरण होता।।

जौहर की ज्वाला देख-देख, वीरों ने भीषण समर किया।
नश्वर क्षण भंगुर जीवन को, जौहर ज्वाला ने अमर किया।।

सम्मान मिटा जिन्दा रहने, वाली हसरत मिट जायेगी।
लेकिन ज्वाला से लिखी हुई, तारीख न मिटने पायेगी।।

वे मनुज नहीं अवतारी थी, जलती लपटों में समा गई।
इस एकलिंग की धरती के, कण-कण को चंदन बना गई।।

सतियों के प्राण समर्पण से, हल्दीघाटी का समर हुआ।
वह आजादी का महा मंत्र, कविता के स्वर में मुखर हुआ।।

ज्वाला के अग्नि आचमन ने, भीषण रण का विश्वास दिया।
आने वाली संतानों को, महिमा मंडित इतिहास दिया।।

जौहर की इस तांडव लय ने, युग जेता अमर निशानी दी।
नारी स्वधर्म की रक्षा की, शोणित से लिखी कहानी दी।

उन वहशी मुगल दरिन्दों से, होता मेवाड़ी चीर हरण।
इससे पहले सतियों ने, कर लिया अग्नि का काल-वरण ।।

केवल वह काल जयी होगा, जिसका बलिदान स्वर होगा।
जिसकी स्याही में शोणित है, उसका इतिहास अमर होगा।।

भीषण विप्लव भूचालों से, बलिदानी गंध नहीं मिटती।
उस मिट्टी की संतानों में, प्रण की सौगंध नहीं मिटती।।

पृष्ठ 15 का शेष

बीकानेर रियासत का संक्षिप्त इतिहास

महाराजा की गया यात्रा :- वि.सं. 1893 में महाराजा गया की यात्रा पर गए। गया में उन्होंने अपने सरदारों से पुत्रियों को न मारने की प्रतिज्ञा करवाई। गया से महाराज मिर्जापुर, रीवा, विजयपुर, मांडा, भरतपुर, अलवर आदि राज्यों से होते हुए बीकानेर वापिस आए।

महाराजा की मृत्यु व व्यक्तित्व :- वि.सं. 1908 में महाराजा का स्वर्गवास हुआ। महाराजा रतन सिंह वीर, वीरों का सम्मान करने वाले, सुधारक व विद्वानों के आश्रयदाता थे। उनकी प्रशंसा में जसरत्नाकर, रतन विलास, रतन रूपक आदि ग्रन्थ मिलते हैं। लूट-खसोट करने वाले सरदारों का उन्होंने सदैव दमन किया। उन्होंने प्रजा के सुख व कल्याण के लिए करों में भारी कमी की। उन्होंने पूवर्जों की छत्रियों का जीर्णोद्धार करवाया। वह विष्णु के परम भक्त थे, उन्होंने राजरतन बिहारी मन्दिर का निमार्ण करवाया था।

(क्रमश:)

सत्संग सुनने की विद्या

– स्वामी रामसुखदास जी

सत्संग सुनने की भी एक विद्या है। यदि उस विद्या को काम में लिया जाय तो सत्संग से बहुत लाभ उठाया जा सकता है। अगर किसी को सत्संग सुनने की विद्या आ जाय तो वह बहुत बड़ा विद्वान् बन जाय! पढ़ाई करके कोई इतना विद्वान् नहीं बनता, जितना सत्संग से बनता है। सत्संग में जैसी पढ़ाई होती है, वैसी पढ़ाई ग्रन्थ पढ़ने से नहीं होती। ग्रन्थ पढ़ने से तो एक विषय का ज्ञान होता है, पर सत्संग से पारमार्थिक और व्यावहारिक सब तरह का ज्ञान होता है। सत्संग करने वाला भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, लययोग, राजयोग, अष्टाङ्गयोग, हठयोग आदि अनेक विषयों से परिचित हो जाता है। इतना ही नहीं, जिस विषय को सत्संग में सुना ही नहीं, उस विषय में भी उसकी बुद्धि काम करने लगती है। जैसे, सत्संग में विवाह की चर्चा सुनी ही न हो, पर उसमें भी सत्संग करने वाले की बुद्धि काम करेगी। मेरी तो ऐसी धारणा है कि कोई ठीक तरह से सत्संग सुनेगा अथवा गीता का ठीक तरह से अध्ययन करेगा, उसकी बुद्धि किसी विषय में प्रवेश न करे-यह नहीं हो सकेगा। वह जिस विषय में चाहे, उसी में उसकी बुद्धि प्रविष्ट हो जायगी। इसलिये मन लगाकर सत्संग सुनना चाहिये।

जो प्रत्येक काम मन लगाकर करता है, वही मन लगाकर सत्संग सुन सकेगा। इसलिये जो भी काम करें, मन लगाकर करें। रसोई बनायें तो मन लगाकर बनायें, भोजन करें तो मन लगाकर करें, शौच-स्नान आदि करें तो मन लगाकर करें। ऐसा करने से प्रत्येक काम मन लगाकर करने का स्वभाव पड़ जाएगा। वह स्वभाव पारमार्थिक मार्ग में भी काम आयेगा, जिससे सत्संग, भजन, ध्यान आदि में मन लगने लगेगा। इसलिये ऐसा न समझें कि केवल भजन-ध्यान ही मन लगाकर करने हैं, दूसरे काम मन लगाकर नहीं करने हैं। प्रत्येक काम मन लगाकर करना है, जिससे काम भी बढ़िया होगा और स्वभाव भी सुधरेगा। वास्तव में काम सुधरने से इतना लाभ नहीं है, जितना स्वभाव सुधरने से लाभ है। स्वभाव में सुधार होने से प्रत्येक काम में बुद्धि प्रवेश करेगी, प्रत्येक काम करने की विद्या आ जाएगी।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस काम को लोग वर्षों से प्रतिदिन करते आ रहे हैं, उसको भी वे ठीक तरह से नहीं करते। जैसे, स्त्रियाँ उम्र भर बालकों को पालते-पालते बूढ़ी हो जाती हैं, पर बालकों को भोजन कराना प्रायः नहीं आता! बालक को एक साथ ज्यादा परोस दें तो वह थोड़ा खाकर छोड़ देगा, पर थोड़ा-थोड़ा करके परोसे तो वह ज्यादा खा लेगा। इसी तरह वक्ता को प्रायः कहना नहीं आता और श्रोता को प्रायः सुनना नहीं आता। इसका कारण यह है कि प्रत्येक काम मन लगाकर करने का स्वभाव नहीं है।

कई सज्जन प्रश्न किया करते हैं कि मन कैसे लगे? अतः मन लगाने की एक सुगम युक्ति बतायी जाती है। चुपचाप बैठ जायँ और मनसे भगवन्नाम का जप करें तथा मन से ही उसकी गिनती करें। हाथ में न तो माला रखें, न अँगुलियों से गिनें और न मुँह से ही बोलें, केवल मन से ही गिनती करें। इस प्रकार कम-से-कम एक माला (108 बार) भगवन्नाम का जप करें। गिनती में चूकें नहीं। अगर चूक जायँ तो पुनः एक से शुरू करें। ऐसा करके देखें तो बड़ा लाभ होगा। कुछ लोग केवल तमाशे की तरह पूछ लेते हैं कि मन कैसे लगे, पर जो उपाय बताया जाता है, उसको करते ही नहीं! किसी व्यक्ति ने एक सन्त से पूछा कि महाराज! मन कैसे लगे? तो उन्होंने पूछा कि तुमने यह प्रश्न मेरे से ही किया है या पहले और भी किसी से किया था? उसने कहा कि और भी किसी से किया था। सन्त ने पूछा कि उसने क्या उपाय बताया था? वह बोला कि यह तो मेरे को याद नहीं है। सन्त बोले-तो फिर यही दशा मेरी भी होगी! मेरे से उपाय पूछकर मेरी फजीती ही करोगे!

कई भाई-बहन सत्संगके समय माला फेरते रहते हैं अथवा कापी में भगवन्नाम लिखते रहते हैं। अगर तत्परता से मन लगाकर सत्संग सुनते हों, पर पूर्वाभ्यास के कारण (स्वभाववश) स्वतः जप होता हो तो कोई बाधा नहीं आती। परन्तु ध्यान एक तरफ ही रहेगा, दो तरफ नहीं। जो कभी सत्संग में ध्यान रखता है और कभी माला में ध्यान रखता है, उसको सत्संग सुनना आता ही नहीं। सत्संग के समय जिसका मन और जगह चला जाता है, घर आदि की बातें याद आती रहती हैं, वह ठीक तरह से सत्संग सुन ही नहीं सकता। स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) में गंगा जी के तट पर वटवृक्ष के नीचे सत्संग हो रहा था। वहाँ मैंने भाई-बहनों से कहा कि आप लोग ध्यान देकर सुनोगे तो एक ही बात सुन सकोगे, दो बात नहीं सुन सकोगे। मैंने उदाहरण दिया कि अभी गंगा जी का शब्द हो रहा है न? वे बोले कि हाँ, हो रहा है। मैंने पूछा कि इतनी देर से क्या आप गंगा जी का शब्द सुन रहे थे? वे बोले-नहीं सुन रहे थे। क्यों नहीं सुन रहे थे? कि मन सत्संग सुनने में लगा था। कान भी थे और शब्द भी था, पर मन उस तरफ न रहने से वह सुनायी नहीं देता था। इसी तरह श्रोता का मन दूसरी तरफ रहेगा तो वह सत्संग नहीं सुन सकेगा। जैसे सत्संग सुनते समय अपने-आप श्वास चलते हैं, नब्ज चलती है, उसमें मन नहीं लगाना पड़ता, ऐसे ही बिना मन लगाये अपने-आप जप होता हो तो सत्संग सुना जा सकता है। परन्तु सत्संग सुनते समय कोई जप करना चाहे तो नहीं हो सकता और लिखना तो हो ही नहीं सकता। मेरे विचार से जिनको घर में राम-राम लिखने के लिये समय नहीं मिलता, घर में काम-धंधा रहता है, वे सोचते हैं कि यहाँ निकम्मे बैठे हैं, कोई काम तो है नहीं, इसलिये यहाँ राम-राम की कापी भर लें! तात्पर्य यह निकला कि जो सत्संग को फालतू समझते हैं, वे वहाँ बैठकर कापी भरते हैं। ऐसे लोग सत्संग नहीं सुन सकते।

ध्यानपूर्वक सत्संग न सुनने से मन संसार का चिन्तन करने लगता है, जिससे सात्त्विकी वृत्ति नहीं रहती, प्रत्युत राजसी वृत्ति आ जाती है। राजसी वृत्ति आने से फिर तत्काल तामसी वृत्ति आ जाती है, जिससे श्रोता को नींद आ जाती है। तात्पर्य है कि मन लगाकर सत्संग न सुनने से सात्त्विकी वृत्ति से सीधे तामसी वृत्ति (नींद) नहीं आती, प्रत्युत क्रम से सात्त्विकी से राजसी और राजसी से तामसी वृत्ति पैदा होती है।

सत्संग के समय श्रोता को चाहिये कि वह अपनी दृष्टि वक्ता के मुख पर रखे। वक्ता के मुख की तरफ देखते हुए ध्यानपूर्वक सुनने से उसकी बातें हृदय में धारण हो जाती हैं। जो कभी इधर और कभी उधर देखते हुए सुनते हैं, उनको सुनना नहीं आता। सुनते समय तत्परता से मन लगाकर सुनना चाहिये कि वक्ता ने किस विषय पर बोलना आरम्भ किया और उसमें कौन-सा दृष्टान्त दिया, कौन-सी युक्ति दी, कौन-सा दोहा या श्लोक कहा आदि-आदि। इस प्रकार मन लगाकर सुनने से श्रोता को पहले ही यह पता चल जाता है कि अब वक्ता आगे क्या कहेगा? कौन-सा विषय कहेगा? सत्संग के समय जब वक्ता दुर्गुण-दुराचार के त्याग की बात कहता है, तब श्रोता दूसरे व्यक्तियों में दुर्गुण-दुराचार का चिन्तन करता है और जब वक्ता सद्गुण-सदाचार को ग्रहण करने की बात कहता है, तब श्रोता अपने में सद्गुण-सदाचार का चिन्तन करने लगता है-इन दोनों बातों से सत्संग के समय कुसंग होने लगता है! कारण कि दूसरे व्यक्ति में अवगुणों का चिन्तन करने से उन अवगुणों से तादात्म्य हो जाता है और तादात्म्य होने से वे अवगुण अपने में स्वतः-स्वाभाविक आने लगते हैं तथा दूसरों में दोष दृष्टि करने का स्वभाव बन जाता है। अपने में सद्गुणों का चिन्तन करने से अपने में अभिमान आ जाता है, जो अवगुणों का मूल है। अतः अवगुणों की बात सुनने पर श्रोता को यह देखना चाहिये कि मेरे में कौन-कौनसे अवगुण हैं और मेरे को किन-किन अवगुणों का त्याग करना है? सद्गुणों की बात सुनने से श्रोता को यह विचार करना चाहिये कि दैवी अर्थात् भगवान् की सम्पत्ति होने से सभी सद्गुण भगवान् के हैं और उनकी कृपा से ही अपने में आते हैं और आये हैं। ऐसा विचार करते हुए श्रोता भगवान् में तल्लीन हो जाय। भगवान् में तल्लीन होने से वे

सद्गुण अपने में स्वतः स्वाभाविक आने लगते हैं। अनुभवी पुरुष यदि किसी विषय का विवेचन करता है तो उसका विवेचन और तरह का (विलक्षण) होता है और जो शास्त्र की दृष्टिसे विवेचन करता है, उसका विवेचन और तरह का होता है। दोनों में बड़ा फर्क होता है। शास्त्र की दृष्टि से विवेचन करने से वे विषय श्रोता को याद हो जाते हैं। इससे वह श्रोता वक्ता तो बन सकता है, पर उसका जीवन नहीं बदल सकता। परन्तु अनुभवी पुरुष के द्वारा विवेचन करने से श्रोता का जीवन बदल जाता है। गीता, रामायण, भागवत आदि सुनने से, भगवान् की लीलाएँ सुनने से भी असर पड़ता है। परन्तु वे भी यदि अनुभवी पुरुष के द्वारा, प्रेमी भक्त के द्वारा सुना जाय तो उसमें बड़ी विलक्षणता होती है। भगवान् के भक्तों के चरित्र पढ़ने, सुनने, कहने से स्वाभाविक ही अन्तःकरण निर्मल होता है। इसलिये मैं भाई-बहनों से बहुत कहा करता हूँ कि आप भक्तों के चरित्र पढ़ो और बालकों को भी पढ़ाओ तथा उनसे सुनो। बालक उनको कहानी के रूप में शौक से पढ़ेंगे तो उन पर भगवद्भावों का असर पड़ेगा। भगवान् और उनके भक्तों के चरित्रों में एक विलक्षण शक्ति है। उनको यदि मन लगाकर सुना जाय तो हृदय गद्गद हो जाएगा, नेत्रों में आँसू आ जाएँगे, गला भर जायगा, एक मस्ती आ जाएगी! श्रीमद्भागवत में आया है-

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।।

(11/14/24)

'जिसकी वाणी मेरे नाम, गुण और लीला का वर्णन करते-करते गद्गद हो जाती है, जिसका चित्त मेरे रूप, गुण, प्रभाव और लीलाओं का चिन्तन करते-करते द्रवित हो जाता है, जो बारम्बार रोता रहता है, कभी हँसने लग जाता है, कभी लज्जा छोड़कर ऊँचे स्वर से गाने लगता है और कभी नाचने लग जाता है, ऐसा मेरा भक्त सारे संसार को पवित्र कर देता है।'

अन्तःकरण की जो सूक्ष्म वासना है, वह जैसे भगवच्चरित्रों को पढ़ने-सुनने से दूर होती है, वैसे विवेक से दूर नहीं होती। विवेकपूर्वक गहरे उतरकर वेदान्त के ग्रन्थों को पढ़ने से उतना लाभ नहीं होता, जितना लाभ भगवान् तथा उनके भक्तों के चरित्रों को मन लगाकर पढ़ने से होता है। वेदान्त के ग्रन्थों को मन लगाकर पढ़ने से विवेक विकसित होता है और भगवान् तथा उनके भक्तों का चरित्र मन लगाकर पढ़ने से अन्तःकरण निर्मल तथा कोमल होता है। अन्तःकरण का कोमल होने से स्वतः भगवद्भक्ति होती है। तात्पर्य है कि विवेक में अन्तःकरण पिघलता नहीं, प्रत्युत कठोर रहता है; परन्तु भक्ति में अन्तःकरण पिघलता है, जिससे उनमें भक्ति के नये संस्कार बैठते हैं।

विवेक **'विचिर् पृथग्भावे'** धातु से बनता है। तात्पर्य है कि विवेक में दो चीजें होती हैं; जैसे- सत् और असत्, नित्य और अनित्य, शुभ और अशुभ, कर्तव्य और अकर्तव्य, ग्राह्य और त्याज्य आदि। सत् और असत् के विवेक में साधक असत् का त्याग करता है। असत् का त्याग करने पर भी असत् की सूक्ष्म सत्ता बनी रहती है। परन्तु तत्परतापूर्वक भगवान् के चरित्रों को, स्तोत्रों को तल्लीन होकर पढ़ने से एक भगवान् की ही सत्ता रहती है, दूसरी सत्ता नहीं रहती। इसलिये भीतर की जो सूक्ष्म वासनाएँ हैं, वे भगवान् और उनके भक्तों के चरित्र पढ़ने-सुनने से सुगमतापूर्वक नष्ट हो जाती हैं -

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई।
अभिअंतर मल कबहुँ न जाई।।

(मानस, उत्तर. 49/3)

भूख लगने पर भोजन जितना गुण करता है, वैसा बिना भूख के नहीं करता; क्योंकि भूख के बिना रस नहीं बनता और रस बने बिना शक्ति नहीं आती। अतः भूख के बिना बढ़िया भोजन भी किस काम का? इसी तरह अगर श्रोता में जानने की भूख हो और वक्ता अनुभवी हो तो श्रोता के अन्तःकरण में वक्ता की बात प्रविष्ट हो जाती है। श्रोता में तीव्र जिज्ञासा हो और किसी एक मत का पक्षपात न हो तो सुनने मात्र से बोध हो जाता है। गीता में आया है-

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।। (7/3)

'हजारों मनुष्यों में कोई एक वास्तविक सिद्धि के लिये यत्न करता है और उन यत्न करने वाले सिद्धों में कोई एक ही मुझे तत्त्व से जानता है।'

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि तत्त्व की प्राप्ति कठिन है। इसका तात्पर्य है कि श्रोता ध्यान नहीं देते। हजारों मनुष्यों में कोई एक ठीक ढंगसे सुनता है और तत्त्व प्राप्ति के लिये साधन करता है। जो साधन करके बहुत दूर तक पहुँच गये हैं, ऐसे सिद्धों में भी कोई एक ही तत्त्व से जानता है। इस प्रकार इस श्लोक में मनुष्यों की सामान्य वस्तुस्थिति का वर्णन किया गया है, तत्त्व प्राप्ति की कठिनता का वर्णन नहीं किया गया है। तत्त्व प्राप्ति की अलौकिकता का वर्णन करते हुए भगवान् कहते हैं-

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।।

(गीता 2/29)

'कोई इस शरीरी को आश्चर्य की तरह देखता अर्थात् अनुभव करता है। वैसे ही अन्य कोई इसका आश्चर्य की तरह वर्णन करता है तथा अन्य कोई इसको आश्चर्य की तरह सुनता है और इसको सुन करके भी कोई नहीं जानता।'

उस तत्त्व का अनुभव, वर्णन आदि सब विलक्षण रीति से होता है, लौकिक बातों की तरह नहीं होता। 'अन्य' कहने का तात्पर्य है कि तत्त्व का अनुभव करने वालों में भी वर्णन करने वाला कोई एक ही होता है। सब-के-सब अनुभव करने वाले उसका वर्णन नहीं कर सकते। इसको सुन करके भी कोई नहीं जानता; क्योंकि वह मन लगाकर जिज्ञासापूर्वक नहीं सुनता।

'यत्न करने वाले सिद्धों में कोई एक ही मुझे तत्त्व से जानता है'- ऐसा कहने का तात्पर्य है कि यत्न से अर्थात् भीतर की लगन से ही परमात्म तत्त्व को जाना जा सकता है और 'इसको सुन करके भी कोई नहीं जानता'- ऐसा कहने का तात्पर्य है कि सुनने मात्र से अर्थात् अभ्यास से उस तत्त्व को कोई नहीं जान सकता। अभ्यास में मन-बुद्धि की प्रधानता होती है, पर लगन में स्वयं की प्रधानता होती है। अभ्यास से एक नयी अवस्था का निर्माण होता है, जबकि लगन से स्वयं में सदा से विद्यमान तत्त्व प्रकट हो जाता है।

अनुभवी मनुष्य के द्वारा सुना जाय तो भीतर एक शक्ति प्रवेश करती है। पर सब आदमी उसकी बातों को पकड़ नहीं पाते। कारण कि वक्ता का जो अनुभव है, उसको वह वाणी के द्वारा नहीं कह सकता। उसका जो अनुभव है, उतना बुद्धि में नहीं आता। बुद्धि में जितनी बातें आती हैं, उतनी मन में नहीं आतीं। मन में जितनी बातें आती हैं, उतनी वाणी में नहीं आतीं। वाणी में जितनी बातें आती हैं, उतनी श्रोता के कानों तक नहीं पहुँचतीं। कानों तक जितनी बातें पहुँचती हैं, उतनी उसका मन मनन नहीं करता। मन जितनी बातों का मनन करता है, उतनी बातों का बुद्धि में निश्चय नहीं होता। बुद्धि में जितना निश्चय होता है, उतना अनुभव में नहीं आता। इस प्रकार क्रम से देखें तो कहने वाले के अनुभव और सुनने वाले के अनुभव में बहुत अन्तर पड़ जाता है। परन्तु यदि श्रोता जिज्ञासु हो और वह मन लगाकर सुने तो बहुत जल्दी अनुभव हो जाता है।

सतगुरु भूठा इन्द्र सम, कमी न राखे कोय।
वैसा ही फल नीपजै, जैसी भूमिका होय।।

जैसे वर्षा सब जगह एक समान ही बरसती है। वर्षा, जमीन, खाद, धूप, वायु और जलमें कोई फर्क न होने पर भी एक साथ पैदा होने वाले मतीरे के स्वाद में और तस्तुम्बा (विसलुम्बा) के स्वाद में बड़ा भारी फर्क होता है; क्योंकि दोनों का बीज अलग-अलग होता है। जैसा बीज होता है, वैसा ही फल होता है। परन्तु मनुष्य की बात इससे विलक्षण है! मनुष्य का बीज अर्थात् भाव पलट भी सकता है और वह दुष्टसे सन्त बन सकता है, दुरात्मा से महात्मा बन सकता है (गीता 9/30-31); क्योंकि मूल में वह परमात्मा का ही अंश है। परन्तु उसमें दो बातें होनी चाहिये-वह कपटरहित हो और आज्ञा के अनुसार चले- 'अमाययानुवृत्त्या' (श्रीमद्भा 11/3/22)। इसलिये श्रोता में कपट नहीं होना चाहिये अर्थात् भीतरमें किसी बात का कोई आग्रह, कोई पकड़ नहीं होनी चाहिये। अपनी बात का आग्रह होगा तो वह दूसरे की बात सुन

नहीं सकेगा और सुनेगा भी तो पकड़ नहीं सकेगा। कारण कि अपना आग्रह रहने से श्रोता का हृदय वक्ता की बात को फेंकता है, ग्रहण नहीं करता। इससे वक्ता की अच्छी बात भी हृदय में बैठती नहीं। अतः अपने मत, सिद्धान्त, सम्प्रदाय का आग्रह तत्त्व प्राप्ति में बहुत बाधक है।

श्रोता अपनी कोई आड़ न लगाये तो अनुभवी महापुरुष के भाव उसके भीतर शीघ्र प्रविष्ट हो जाते हैं।

पारस केरा गुण किसा, पलटा नहीं लोहा।
कै तो निज पारस नहीं, कै बिच रहा बिछोहा ।।

यदि लोहे से सोना नहीं बना तो पारस असली नहीं है अथवा लोहा असली नहीं है। यदि पारस भी असली हो और लोहा भी असली हो, जंग लगा हुआ न हो तथा पारस और लोहे के बीचमें कोई आड़ (मिट्टी, पत्ता आदि) न हो तो पारस से स्पर्श होते ही लोहा तत्काल सोना बन जाता है। इसी तरह अगर कहने वाला अनुभवी हो, सुनने वाला जिज्ञासु हो और बीच में अपनी कुछ अटकल न लगाये तो वह पारस हो जाता है! इतना ही नहीं, वह पारस से भी विलक्षण हो जाता है–

पारस में अरु संत में, बहुत अंतरौ जान।
वह लोहा कंचन करै, वह करै आपु समान।।

पारस से बना हुआ सोना दूसरे लोहे को सोना नहीं बना सकता। कारण कि पारस लोहे को सोना बनाता है, पारस (अपने समान) नहीं बनाता। परन्तु अनुभवी महापुरुष निष्कपट भाव से सुनने वाले और आज्ञा के अनुसार चलने वाले को भी अपने समान सन्त बना देता है, मानो पारस की टकसाल खुल जाती है !

यदि श्रोता में एकमात्र परमात्म प्राप्ति का उद्देश्य नहीं है और वह केवल सीखने के लिये, सीखकर व्याख्यान देने के लिये सत्संग सुनता है तो वह सत्संग को बुद्धि का विषय बनाता है और सीखे हुए ज्ञान को ही अनुभव मान लेता है। ऐसे (सीखने के उद्देश्य से सत्संग करने वाले) श्रोता को सत्संग में नयापन नहीं दीखता और वह कहता है कि इन बातों को तो मैं जानता हूँ, इनको बार-बार सुनने से क्या लाभ? सीखे हुए ज्ञान से श्रोता पण्डित, वक्ता, लेखक तो हो सकता है, पर तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त, भगवत्प्रेमी नहीं हो सकता। वह दूसरों को उनके प्रश्नों का उत्तर दे सकता है, उनको ज्ञान की बातें सिखा सकता है, पुस्तक लिख सकता है, पर तत्त्व का अनुभव नहीं करा सकता। कारण कि वाचिक ज्ञानी बनने से उसमें ज्ञान का अभिमान पैदा हो जाता है। जैसे बहेड़े की छाया में कलियुग रहता है, ऐसे ही अभिमान की छाया में सम्पूर्ण दोष और उनके कारण विद्यमान रहते हैं। परन्तु जो सच्चे हृदय से परमात्म प्राप्ति करना चाहता है, वह तो अनुभव के लिये ही सुनता है, सीखने के लिये नहीं। वह सत्संग को केवल बुद्धि का विषय ही नहीं बनाता, प्रत्युत साथ-साथ उसमें तल्लीन भी होता है।

यद्यपि आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ने से तथा प्रवचनों की कैसेट सुनने से भी लाभ होता है, तथापि अनुभवी पुरुष के द्वारा सुनने से बहुत अधिक विचित्र लाभ होता है। जिसने पहले प्रवचन सुना है, वह यदि उस प्रवचन की कैसेट सुने तो उसपर जितना असर पड़ता है, उतना नये आदमी पर नहीं पड़ता। कारण कि जिसने पहले सत्संग सुना है, वह उसकी कैसेट सुनेगा तो वह सब-का-सब दृश्य उसके मन के सामने आ जायगा, जिससे एक विलक्षण असर पड़ेगा। इसी तरह सत्संग सुनने से जितना असर पड़ता है, उतना पुस्तक पढ़ने से नहीं पड़ता। कारण कि सत्संग सुनने से वक्ता के नेत्र, हाथ आदि की मुद्रा, उसके भाव, उसकी दृष्टि का श्रोता पर एक विलक्षण असर पड़ता है। सुनने में तो सुनाने वाले की बुद्धि की प्रधानता रहती है, पर पुस्तक पढ़ने में तथा कैसेट सुनने में अपनी बुद्धि की प्रधानता रहती है। अगर श्रोता वक्ता के विवेचन को ध्यानपूर्वक सुने तो उसकी बुद्धि वक्ता की बुद्धि में प्रविष्ट हो जाती है। श्रोता अपनी बुद्धि से उतना नहीं समझ सकता, जितना सुनाने वाले की बुद्धि से समझ सकता है। अगर सुनाने वाले की कृपादृष्टि हो जाय तो उससे बहुत विशेष लाभ होता है। जैसे गाय का बछड़ा अपनी माँ के स्तनों से दूध पीकर ही पुष्ट होता है। अगर बछड़े की माँ

(शेष पृष्ठ 28 पर)

मंत्र की शक्ति

– आचार्य महाप्रज्ञ

मंत्र के तीन तत्व हैं-शब्द, संकल्प और साधना। मंत्र का पहला तत्व है शब्द। शब्द मन के भावों को वहन करता है। मन के भाव शब्द के वाहन पर चढ़कर यात्रा करते हैं। कोई विचार संप्रेषण (टेलीपेथी) का प्रयोग करे, कोई सजेसन या ऑटोसजेसन का प्रयोग करे, उसे सबसे पहले ध्वनि का, शब्द का सहारा लेना ही पड़ता है। वह व्यक्ति अपने भावों को तेज ध्वनि में उच्चरित करता है। जोर-जोर से बोलता है। ध्वनि की तरंगें तेज गति से प्रवाहित होती हैं। फिर वह उच्चारण को मध्यम करता है, धीमा करता है, मंद कर देता है। पहले होंठ, दांत, कंठ सब अधिक सक्रिय थे, वे मंद हो जाते हैं, ध्वनि मंद हो जाती है। होठों तक आवाज पहुँचती है पर बाहर नहीं निकलती । जोर से बोलना या मंद स्वर में बोलना-दोनों कंठ के प्रयत्न हैं, स्वर-तंत्र के प्रयत्न हैं।

जब मंत्र की मानसिक क्रिया होती है, मानसिक जप होता है तब. न कंठ की क्रिया होती है, न जीभ हिलती है, न होठ और दांत हिलते हैं। स्वर-तंत्र का, कोई प्रकम्पन नहीं होता।

शब्द अपने स्वरूप को छोड़कर जब प्राण में विलीन हो जाता है, मन में विलीन हो जाता है, तब वह अशब्द बन जाता है।

मंत्र का दूसरा तत्व है-संकल्प। मंत्र-साधक की संकल्प-शक्ति दृढ़ होनी चाहिए। यदि संकल्प-शक्ति शिथिल है, दुर्बल है तो मंत्र की उपासना उतना फल नहीं दे सकती, जितनी फल की अपेक्षा की जाती है। मंत्र-साधक में विश्वास की दृढ़ता होनी चाहिए। उसकी श्रद्धा और इच्छाशक्ति गहरी होनी चाहिए। उसका आत्म-विश्वास जागृत होना चाहिए। उसमें यह भावना होनी चाहिए, आत्म विश्वास होना चाहिए कि जो कुछ वह कर रहा है, अवश्य ही फलदायी होगा। वह अपने अनुष्ठान में निश्चित ही सफल होगा। सफलता में काल की अवधि का अन्तर आ सकता है। किसी को एक महीने में, किसी को दो-चार महींनों में और किसी को वर्ष भर बाद ही सफलता मिले । किसी व्यक्ति को पूरी शक्ति के साथ मंत्र का अनुष्ठान करने पर ही सफलता मिलती है और किसी को कम शक्ति लगाने पर भी सफलता मिल जाती है। इसके अनेक कारण हैं। किन्तु प्रत्येक मंत्र-साधक में यह आत्म-विश्वास और संकल्प होना ही चाहिए कि 'मैं अपने अनुष्ठान में अवश्य ही सफल होऊंगा।'

मंत्र का तीसरा तत्व है-साधना। शब्द भी है, आत्मविश्वास भी है किन्तु साधना के अभाव में मंत्र फलदायी नहीं हो सकता। जब तक मंत्र-साधक आरोहण करते-करते मंत्र को प्राणमय न बना दे तब तक वह सतत साधना करता रहे। वह निरंतरता को न तोड़े। जब तक वह आरोहण के क्रम को न छोड़े, उसमें शिथिलता न आने दे। मन शिथिल होते ही आरोहण का प्रयत्न छूट जाता है। तब सफल होने की बात ही प्राप्त नहीं होती। साधना में निरंतरता और दीर्घकालिता-दोनों अपेक्षित हैं।

दीर्घकाल का अर्थ है जब तक मंत्र का जागरण न हो जाए, मंत्र वीर्यवान् न बन जाए, मन चैतन्य न हो, जो मंत्र शब्दमय था, वह एक ज्योति के रूप में प्रकट न हो जाए, तब तक उसकी साधना चलती रहे।

मंत्र स्वयं शक्तिशाली होता है। उसका वर्ण-विन्यास, अक्षर-संरचना शक्तिशाली होती है। एक-एक अक्षर इतना शक्तिशाली होता है कि जिसकी कोई कल्पना नहीं की जा सकती। आप इसे दर्शन की गहराइयों में जाकर समझें। वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर 'अ' 'आ' आदि अनन्त पर्यायों से युक्त होता है। प्रत्येक अक्षर के अनन्त पर्याय हैं। अनन्त अवस्थाएं घटित होती हैं। हम उनकी कल्पना भी नहीं कर सकते। अक्षर अर्थात् अक्षरणशील। उसका कभी

क्षरण नहीं होता। अक्षर तीन हैं-परमात्मा अक्षर है, आत्मा अक्षर है और वर्णमाला का वर्ण अक्षर है। इनका कभी क्षरण नहीं होता।

आप स्वयं इसका अनुभव करें 'रं' 'रं' को लें। इसका उच्चारण करें। मात्र उच्चारण, मात्र ध्वनि। इसके साथ मंत्र की भावना न भी जोड़ें, इसके साथ अन्तर्ध्वनि को न भी जोड़ें, एकाग्रता को न भी जोड़ें, केवल रं, रं, रं की ध्वनि करते जाएँ। कुछ ही समय बाद आप अनुभव करने लगेंगे कि आपके शरीर में ऊष्मा बढ़ रही है, ताप बढ़ रहा है।

अक्षर के अनन्त पर्याय हैं। एक छोटा-सा बच्चा भी 'अ' 'आ' 'क' 'ख' रट लेता है, इससे भाषा का विकास होता है। भाषा के द्वारा विचारों का विनिमय होता है। इतनी बात तो समझ में आ जाती है, किन्तु एक-एक अक्षर के अनन्त पर्याय हैं, उसकी अनन्त शक्ति है, यह बात समझ में नहीं आती। एक आचार्य ने इस तथ्य को समझाने के लिए एक ग्रन्थ का निर्माण किया। उसका नाम है-'अष्टलक्षी'। उसमें आठ अक्षरों का प्रयोग है-'राजा नो ददते सौख्यम्'। आचार्य ने इस पद के आठ लाख अर्थ किए हैं। उन्होंने लिखा है-'मेरे जैसा अल्पज्ञानी व्यक्ति इसके आठ लाख अर्थ कर सका है। कोई सिद्ध ज्ञानी इसके अनन्त अर्थ कर सकता है।'

यह एक छोटा-सा उदाहरण है। इससे हम अक्षर की अनन्त क्षमता को समझ सकते हैं। मंत्र छोटा होता है, पर उसमें अनन्त शक्ति होती है।

'णमो अरिहंताणं'- इस सप्ताक्षरी मंत्र के जाप से कषाय क्षीण होते हैं। 'णमो अरिहंताणं' के जाप की चौसठ विधियां हैं। तैजस केन्द्र में इस मंत्र का ध्यान करने से क्रोध उपशांत होता है, क्षीण होता है। आनन्द केन्द्र में इस मंत्र का ध्यान करने से मान, अहंकार क्षीण होता है। विशुद्धि केन्द्र में इस मंत्र का ध्यान करने से माया क्षीण होती है। तालु केन्द्र में इसका ध्यान करने से लोभ क्षीण होता है। इस मंत्र के द्वारा सारे कषाय क्षीण होते हैं। मंत्र से उत्पन्न होने वाली ध्वनि-तरंगों के द्वारा, मंत्र के साथ घुलने वाली भावना के द्वारा, संकल्प शक्ति और मंत्र के साथ होने वाली गहन श्रद्धा के द्वारा तथा मंत्र के साथ होने वाले इष्ट के साक्षात्कार के द्वारा कषाय नष्ट होते हैं। मंत्र-शक्ति का यह एक उदाहरण मात्र है।

मंत्र की आराधना की अनेक निष्पत्तियां हैं। वे निष्पत्तियां आन्तरिक भी हैं और बाह्य भी हैं, मानसिक भी हैं और शारीरिक भी हैं। मंत्र की आराधना से जब मंत्र सिद्ध होने लगता है, तब कुछ निष्पत्तियाँ हमारे सामने प्रकट होती हैं। पहली निष्पत्ति है-मन की प्रसन्नता। जैसे जैसे मंत्र सिद्ध होने लगता है, मन में प्रसन्नता आने लगती है। उस समय न हर्ष का मैल होता है और न शोक का मैल होता है। कोई मैल नहीं रहता। सारे मैल धुल जाते हैं। न राग का मैल और न द्वेष का मैल। मन बिल्कुल निर्मल और प्रसन्न।

इसका दूसरा परिणाम है-चित्त की सन्तुष्टि। बिना किसी उपलब्धि के भी मन सन्तुष्ट हो जाता है। जो संतोष पदार्थ की उपलब्धि के पश्चात् होता है, कुछ मिलने पर होता है, वह वास्तव में संतोष नहीं होता, वह एक वासना की तृप्ति मात्र होता है। तृप्ति के साथ अतृप्ति जुड़ी होती है। पदार्थ की उपलब्धि के बिना भी मन संतोष से इतना भर जाता है कि सारी चाह मिट जाती है, कुछ भी नहीं चाहिए। यही वास्तव में मानसिक तोष है।

इसी प्रकार मंत्र की आराधना से स्मृति-शक्ति का विकास होता है, बौद्धिक शक्तियों का विकास होता है और अनुभव की चेतना जागती है। ये मानसिक निष्पत्तियां हैं, जो प्रत्यक्ष अनुभव में आती है।

मंत्र की आराधना का शरीर पर भी प्रभाव होता है। मंत्र की आराधना जैसे-जैसे विकसित होने लगती है, अनायास ही व्यक्ति की आँखों में आँसू छलक पड़ते हैं, शरीर रोमांचित हो जाता है, कंठ गद्गद हो जाता है, वाणी भारी-सी हो जाती है। ये शारीरिक लक्षण प्रकट होने लगते हैं। स्वास्थ्य का भी परिवर्तन होता है।

जप करने वाला या मंत्र की आराधना करने वाला व्यक्ति क्षय, अरुचि, अग्नि की मंदता आदि-आदि बीमारियों पर नियंत्रण पा लेता है। बीमारियां समाप्त हो जाती हैं।

मंत्र की आराधना के द्वारा तैजस को सक्रिय बनाया जाता है। मंत्र की आराधना का सबसे पहला प्रभाव पड़ता है तैजस शरीर पर। जब तक तैजस शरीर तक मंत्र नहीं पहुंचता, तब तक मंत्र सफल नहीं होता। वह मात्र शब्द का पुनरावर्तन बन कर रह जाता है।

मंत्र की सफलता का सूत्र है-शब्द को आगे पहुँचाते-पहुँचाते, स्थूल शरीर की सीमाओं को पार कर, तैजस शरीर की सीमा में पहुँचा देना ।

जब मंत्र तैजस शरीर तक पहुंच जाता है, तब वहाँ उसकी शक्ति बढ जाती है, फिर तैजस शरीर में जो प्राणधारा निकलती है, उससे मंत्र शक्तिशाली बन जाता है। इस स्थिति में शरीर में शक्ति बढ़ जाती है, मन की शक्ति बढ़ जाती है और संकल्प की शक्ति बढ़ जाती है-मन की सारी क्रियाओं की शक्ति बढ़ जाती है।

मंत्र की आराधना का बहुत बड़ा परिणाम, उपलब्धि या निष्पत्ति है-संकल्पशक्ति का विकास।

मंत्र की साधना जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, संकल्पशक्ति का विकास होता चला जाता है। इससे इच्छा शक्ति बहुत विकसित होती है, प्रबल होती है। इससे एक प्रकार का कवच हमारे चारों ओर बन जाता है। तब बाहर का आक्रमण, बाहर का संक्रमण, बाहर का कुप्रभाव उस कवच को भेदकर व्यक्ति की चेतना तक नहीं पहुंच पाता। वह बाहर ही रह जाता है। संकल्प-शक्ति और प्राण-शक्ति का विकास होता है। आभामण्डल, लेश्याओं का घेरा और एक विचित्र प्रकार का ओरा-ये सारे हमारे शरीर के आस-पास चारों ओर एक वलयाकार में बन जाते हैं। यह सारा मंत्र-शक्ति का प्रभाव है।

मंत्र एक शक्ति है। शक्ति का उपयोग अच्छे काम के लिए भी हो सकता है और बुरे काम के लिए भी हो सकता है। चाकू से ऑपरेशन भी होता है और चाकू से दूसरे का गला भी काटा जाता है। शक्ति शक्ति होती है। उसका अच्छा या बुरा प्रयोग करना प्रयोक्ता पर निर्भर करता है। शक्ति अपने आप में अच्छी या बुरी नहीं होती ।

मंत्र एक शक्ति है, ऊर्जा है। उस शक्ति के द्वारा अध्यात्म का दरवाजा बन्द भी किया जा सकता है और खोला भी जा सकता है। अध्यात्म के जागरण में मंत्र का बहुत बड़ा योग हो सकता है। इस भ्राँति को मिटा दें कि मंत्र-प्रयोग के केवल छह ही प्रयोजन हैं। समय-समय पर मंत्रों के अनेक प्रयोजन सामने आए हैं। मंत्रों से चिकित्सा होती है। मंत्र द्वारा भयंकर बीमारियां नष्ट होती हैं। मंत्र-साधना के द्वारा व्यक्ति अपनी ऊर्जा को इतनी प्रबल बना देता है, आभामण्डल को इतना शक्तिशाली बना देता है, अपने लेश्या के कवच को इतना सूक्ष्म बना देता है कि आने वाले बुरे विचारों के परमाणु उसको प्रभावित नहीं कर पाते, उसके मस्तिष्क में प्रवेश नहीं कर पाते।

जब सुषुम्ना का उद्घाटन होता है, तब मनुष्य के लिए अन्तर्मुखी निष्काम और निर्विकार होने का द्वार खुलता है। प्राण की धारा जब सुषुम्ना में प्रवाहित होने लगती है, तब आध्यात्मिक जागरण प्रारंभ होता है। अध्यात्म जागरण का पहला बिन्दु या उस यात्रापथ का पहला चरण है-सुषुम्ना में प्राणधारा का प्रवेश। मंत्र के द्वारा ऐसा किया जा सकता है! मंत्र के द्वारा हम ऐसी सूक्ष्म ध्वनि तरंगें पैदा करते हैं कि सुषुम्ना के द्वार खुल जाते हैं और व्यक्ति में आध्यात्मिक जागृति की किरण फूट पड़ती है। ●

मंत्र जब फैलता है तो समुद्र और पर्वत भी छोटे हो जाते हैं और मनुष्य दुर्दमनीय हो जाता है। किन्तु मन जब सिमटता है तब एक चींटी भी हाथी की भाँति दिखाई देने लगती है।

– रांग्येव राघव

गतांक से आगे

महान क्रान्तिकारी राव गोपालसिंह खरवा

– भंवरसिंह मांडासी

श्रद्धांजलियाँ व संदेश

उस समय तक राव गोपालसिंह के क्रान्तिकारी साथी और अभिन्न मित्र ठा. केशरीसिंह बारहठ जीवित थे। राव साहब के निधन का दुःखद समाचार मिलने पर उन्होंने तत्काल राव साहब को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए एक हृदयस्पर्शी कवित्त की रचना कर डाली। उसमें राव साहब के जीवन की महत्ता और विशिष्टता को जीवन्त शब्दों में चित्रांकित करते हुए उनके अभाव में राजपूतों में उत्पन्न रिक्तता पर भी खेद व्यक्त किया था।

कवित्त

1. परम उदार त्याग मूर्ति पुंज साहस का,
क्रान्ति का पुजारी दुख देश का सहा नहीं।
भारती स्वतन्त्र बलिवेदी पे विहंस बढ़ा,
दासता बिलासता की धार में बहा नहीं।।
धीरज धुरीण सहि संकट अटल रहा,
ईश भक्ति भिन्न अन्य आश्रय गहा नहीं।
''राष्ट्रवर'' राव श्रीगोपाल के सिधाते स्वर्ग,
आज राजपूती का नमूना भी रहा नहीं।।

– क्रान्तिकारी बारहठ ठा. केशरीसिंह कोटा

दोहा

2. क्रान्ति दूता गोपाल रो, खरवो थान महान।
नर नाहर थाहर दियै, जंगी गढ़ जोधान।।1।।
गौरां नै ललकारिया, निज भुज बल रै पांण।
आजादी लेवण लड़्या, प्रगट कियो आपाण।।2।।
कष्ट अनेकूं झेलिया, देश विमुक्ति काज।
बाताँ बै गोपाल री, ख्यातां चरचित आज।।3।।
राजा सह बणिया रिया, अंग्रेजां आधीन।
बागी बण्या गोपाल सीं, देश करण स्वाधीन।।4।।
धिन धिन श्री गोपाल नैं, धिन धिन खरवो ठाण।
क्रान्ति ज्योति जागृत रखी, तन धन कर कुरबाण।।5।।

– शेखावत सुरजनसिंह झाझड़

3. खला पर खारो सदा, पुख्त धर्म री पाल।
रतनाकर तूं राठवड़, गुण सागर गोपाल।।

– योगीराज महाराज चतुरसिंह करजाली (मेवाड़)

4. पाट जोधपुर पाटवी, पिरियां ब्रद रिछपाल।
भागबली म्हे भेंटियो, पृथीनाथ गोपाल।।

– श्री शंकरदान आढ़ा पाँचोटिया (मारवाड़)

5. गढ़ गाहण गोपाल, सगतावत जोधो सबल।
धन्त-धरारी ढ़ाल, दीठो नहीं दूजो धरा।।

– रावल नरेन्द्रसिंह जोबनेर (जयपुर)

6. आ कुण ऊचारैह-कलू अमल सारै कियो।
खरवो दिल खारैह, ललकारै भालो लियाँ।।
भारत रा भोपाल, स्याल हुआ नासत समै।
गुंजारै गोपाल, केहरी उणिहारै कमध।।

– बारहठ हिंगलाज दान कविया-सेवापुर (जयपुर)

7. डारण भुज दण्डाँह, रजवट बट गोपाल रै।
खरखो नव खण्डाँह, कमधजियो चावो कियो।।
बीजा चीत्त बोदाह, कलजुगिया ठाकर किता।
जग मालह जोदाह, त्याग खाग भुज ताहरै।।
भू-मण्डल भोपाल, सींह बृटिश रै हिरणसम।
गिड़ अेकल गोपाल, कमाधजियो डाकर करै।।

– बारहठ हेमदान कविया-कवियों की बासणी (पाली)

कवित्त

8. आज राजपूतन को गौरव सीखातो कौन,
क्षत्रीकुल कीर्ति कौन शिखर चढ़ावतो।

खरवा नरेश कमधेश माधवेशनन्द,
मूँछैं देश बैरिन पै भौहें को मिलावतो।।
हिन्दुन के हक्क काज हो तो कटिबद्ध कौन,
धर्मगजराज काज कौन बेल धावतो?
शत्रुन के शाल तूं गोपाला जो न लेतो जन्म,
क्षत्रीवट शोभा कौन क्षत्रिन पै पावतो।।

डिंगल–गीत

करना उपकार धरम रो केतो, धारी रजपूती बृद धार।
धन धन रे लीधो मुरधरिया, भारत देस तणों भुज भार।।1।।
कोपै कमध महेस जिसीकर, रौपे पग रहियो राठौड़।
थरकै लाट किता लख थानैं, मानैं अजमेरो सिरमोड़।।2।।
धड़कै दिली आगरो धूजै, कमधज थूं झाले केवाण।
सत्रव दल ढूकै नहँ सामाँ, फिर लंदन संकै फिरँगाण।।3।।
रण सझियां माधव सुत रूठै, अरियाँ हन्दाँ उतन उपाड़।
जे तारागढ़ पै चढ़ जावै, दिन में तारा दिवै दिखाड़।।4।।
बड़वा धकती कौन बुझाड़ै, कुण नर जाय जगाड़ै काल।
नाहर रूप जिसो बड़नामी, गज–गौराँ माँथे गोपाल।।5।।

– बारहठ नाथूसिंह महियारिया उदयपुर (मेवाड़)

ओलूँ

9. आवोजी आवो भारत रो भूषण, अजब आँटीला ओ।
मन भावण आवण री कहज्यो, सांचा सैंण संदेशा ओ।।
मुरधरियां रा मनरा मारू, पंजाब्याँ रा प्यारा हो।
बंगाल्यां रा बाहुबल अरु, सरब देश सिरदार हो।।
होमरूल रा बण्या हिमायती, बंग भंग बिणसायोजी।
रंग रंग राठौड़ राजा, जंग संग सरसायो जी।।
कर्म धर्म रा मर्म कहन्ताँ, कसी है कमर्याँ काठी जी।
मिन्तर पण पवित्तर मिलिया, दामोदर सा राठी जी।।
जरमन रा झगड़ा में उलझया, अंगरेजां सूं जा अड़िया।
सगतेश नाम कानां में सुणतां, अंग्रेजां मन ओझड़िया।।
कपट रच्यो अरु किया कैद, जद तोड़ निकलिया जेल जी।
हाक्या बाक्या रह्या देख सुण, खरवा पति को खेल जी।।
कर्‌यो केस ले जाकर काशी, फरमावण नैं फांसी जी।
काशी बासी री आसीसाँ, करी फांसी री हांसी जी।।
कांगरेस में आताँ कमधज, रिया तिलक रा साथी जी।
अब तो अधिक डरी अंगरेजी, हेर हठीलो हाथी जी।।
जीवन साध्यो सत सूं जोधा, रागी सूं बैरागी जी।
कर्म धर्म राचन्ती काया, गीता–सुणता त्यागी जी।।
माधवसुत, जसवन्तहरा मन, गुणधर ध्यान लगावां जी।
गोपाल गुणारा गाढ़ा, गुण किस किसड़ा गांवा जी।।

– श्री रामनारायण गुणधर (खरवा–ब्यावर)

10. गोपालसिंह जनमान्य दयापायोधे,
श्री राष्ट्रवर्य कुलदीपक देश पूज्ये।
हे धर्मभूषण बलिन यशवन्त पौत्रः,
भूयात् सदा तव जयः कमनीय भूपः।।1।।
यो गंगाधर तुल्य किर्ती धवलः यो देश सेवावृती,
यो वाण्या सद्‌सिंह शेष मनुजान्–सद्धर्म निप्रेरकः।।
यो बुद्धया रिपुनाशकश्च सततम् नीत्या सृतिं दर्शकः।
जीयाद्वै खरवाधिराज नृपति, देशाष्य दुःखा पहः।।2।।

– कवि भट्ट विष्णु बदरी शर्मा–पुष्कर (अजमेर)

11. गोपसिह गहणोंह, भारत रो तूं भूपति।
रण निसंक रहणोह, कृष्ण भरोसै तू कमध।।1।।
कलजुग में केताह, स्वारथबस मरणों सहैं।
निरभय नर नेताह, देस काज दुख भोगवै।।2।।
जिस नैं धन जाणैह–धन कै जाणै धरम नैं।
तूँ मूँछाँ ताणैह–गढ़ पत गोपालसीं।।3।।
गीदड़ केई गुलाम–मुतलब माया में मगन।
नेक ऊबारण नाम–गिणाँ येक गोपाल नैं।।4।।

– बारहठ रिड़मलदान आसिया खरवा

12. कमध गोपाल कहै यों छत्र्यां, राखो नाम चलो कुल राह।
छत्री धर्म भूलो मत वीराँ, लहै चतुर्थ जिकासूँ लाह।।1।।
होय हताय हिमत मत हारो, धारो क्षात्र धर्म बण धीर।
बार बार जलम नहँ मिलसी, निज कुल सदा चढ़ावो नीर।।2।।
रजपूती भगती मन राखो, ज्यूँ आदू पुरखां कम जाण।
रघु दशरथ राम ध्रम राख्यो, धनुष बाण धारिया पांण।।3।।

चंगी पाँच जात छै चकवै, तिणरी थे बाजो सन्तान।
धन वै क्षात्र धर्म प्रणधारी, मानव करैं आजलौं मान।।4।।
राखो धरम, घोड़ भड़ राखो, जाहिर ह्वै ताहरो जद जोम।
राण्ड्यां राज कदे नह राख्यो, भीरू हुयां न रहसी भोम।।5।।
समझौ सगत बियो समझावै, खाग त्याग रौ मोल खरो।
माधव नन्द कहै मुरधरियाँ, माया जोड़ न यौं ही भरो।।6।।

– रामगोपाल गुणार्थी

13. बाँमी बन्द बंकाह्–आतंका धारी अठै।
लंदन में संकाह्–पूरण नृप गोपालरी।।
खास बिलायत खेतरी, ठीक हेतरी ठाल।
किरपा तूँ कीधी कमध, दीधी तुपक दुनाल।।

– बारहठ भूरदान खारी बारैठान

गीत

14. प्रभा ऊजली भू मण्डां जड्डां गाहतो गनीमां पाँण,
बिरद्दां बखाणाँ बोल प्रमाणां बसेस।
बीजा सगतेस बिरदाई रा उदार बापो,
साही क्रीत नयाँ खण्डाँ सराई सुदेस।।
जो मंगी अनेकाँ आड़ा बखेरे अभंगी जंगाँ,
अडगी कबाण पंगी कसीस अगान।
समाजे सुद्रवाँ पाताँ निवाजे सुरेस साजे,
रिमाँधू अग्राजे राजे रसम्मा राजान्।।
आहँसी आचार सार ऊधरा माधेस वाला,
पाताँ प्रतपाल आँचा सिघाला अपार।
बामी बंध गोपसिंह झोका तो अंगँजी बंका,
दान खाग डंका संका अरंदा दातार।।
धरै सारा मनाँ मोट इंडरा ताहराधरा,
सोभाग जसूँतहरा रीझरा सुरन्द।
लाजरा लंगरी भोज, आन रा फूलाणी लाखा,
मोजरा गाहणी हाथाँ चोजरा समंद।।

– दधवाड़िया भैरूंदान (चारणवास वाले)

(क्रमशः)

पृष्ठ 22 का शेष

सत्संग सुनने की विद्या

मर जाय और उसको दूसरी गाय का दूध पिलाया जाय तो वह उतना पुष्ट नहीं होता। कारण कि स्तनपान कराते समय गाय अपने बछड़े को स्नेहपूर्वक चाटती है, हुंकार करती है तो उससे बछड़े की जैसी पुष्टि होती है, वैसी केवल दूध पीने से नहीं होती। ऐसे ही सन्त–महात्मा कृपा करके विशेषता से कहें और सुनने वाला उनके सम्मुख होकर लगनपूर्वक सुने तो तत्काल तत्त्व की प्राप्ति होती है।

हरेक काम में भविष्य होता है, पर परमात्म तत्त्व में भविष्य नहीं होता। परमात्मा की प्राप्ति धीरे–धीरे नहीं होती, प्रत्युत तत्काल होती है। सुनाने वाला अनुभवी पुरुष भी विद्यमान हो, सुनने वाला जिज्ञासु साधक भी विद्यमान हो और परमात्म तत्त्व तो विद्यमान है ही, फिर भविष्य का क्या काम? देरी होने का कोई कारण ही नहीं है। परमात्म तत्त्व नित्य–निरन्तर सब में विद्यमान है। सुनाने वाले ने उधर दृष्टि करायी और सुनने वाले ने उसको जान लिया– इसमें देरी किस बात की? बहुत–से भाई–बहनों ने ऐसी भावना कर रखी है कि सुनते–सुनते, साधन करते–करते, धीरे–धीरे कभी परमात्मा की प्राप्ति होगी। परन्तु वास्तव में सांसारिक काम ही 'कभी' होगा, पारमार्थिक काम 'कभी' नहीं होगा, वह तो 'अभी' ही होगा।

जो वस्तु पैदा होने वाली होती है, उसी की प्राप्ति में भविष्य होता है। जो पैदा होने वाली नहीं है, प्रत्युत नित्य–निरन्तर रहने वाली वस्तु (परमात्म तत्त्व) है, उसकी प्राप्ति में भविष्य कैसे होगा? सुनने की भूख ही नहीं है, परमात्म तत्त्व की तीव्र जिज्ञासा ही नहीं है, उसके लिये तड़पन ही नहीं है, उसके लिये व्याकुलता ही नहीं है, इसी कारण देरी हो रही है!

दुःखदायी होड़

– गुमानसिंह धमोरा

भारतीय सभ्यता को तिलांजली देते हुये हिन्दुस्थान में स्त्री व पुरुष में ईर्ष्यावश व पश्चिमी सभ्यता के आधे अधूरे ज्ञान की वजह से बराबरी की होड़ का दर्प पूर्ण द्वन्द्व जारी है। खासकर स्त्री जाति इसके प्रभाव में ज्यादा आई है। स्वस्थ प्रतिस्पर्धा वांछनीय है व प्रोत्साहित भी की जानी चाहिए। लेकिन प्रकृति के विपरीत होड़ करना किसी हद तक सही नहीं कहा जा सकता। ईश्वर ने या यूँ कहूँ प्रकृति ने कुछ गुण व कुछ कमियाँ स्त्री में दी हैं व कुछ गुण व कुछ कमियाँ पुरुष में दी हैं जिन्हें नकारा नहीं जा सकता लेकिन अपने आपको आधुनिक मानने वाली स्त्री आज इस वास्तविकता को नकारने को उद्दत्त व उतावली है।

प्रकृति ने जहाँ पुरुष को कठोर, बलशाली (तुलनात्मक), कोमलता का अभाव, प्रजनन में आंशिक सहायक, यौनाचार से शारीरिक प्रभाव से मुक्त, मात्रत्व की जटिलताओं का अभाव व विपरीत परिस्थितियों में भी शरीर में मासिक परिवर्तन का अभाव देकर बनाया है। जबकि स्त्री को कोमल, बनिस्पत कम बलशाली, प्रजनन में सम्पूर्ण दायित्व, यौनाचार से शारीरिक प्रभाव मात्रत्व का पूर्ण दायित्व व विपरीत परिस्थितियों में मासिक, शारीरिक परिवर्तन से प्रभावित होना, दिया है। उपरोक्त गुणों व कमजोरियों को मद्देनजर रखकर ही भारतीग संस्कार व कर्तव्यों को ऋषि-मुनियों ने स्थापित किया जिससे कि उन गुणों से लाभ हो व कमजोरियों का विपरीत प्रभाव न पड़े।

मध्ययुग में जरूर कुछ अन्धविश्वास या यूँ कहूँ उस समय की आवश्यकता थी, पनपी जो आज त्यागने योग्य हैं जिसमें घूंघट प्रथा, बुरका प्रथा, सती प्रथा, स्त्री द्वारा नारीयल को न फोड़ना (जिसे शीश की बली के रूप में माना जाता था), स्त्रियों को बारात व श्मशान से दूर रखना, आदि शामिल हैं। खैर इनके पीछे भी कुछ तथ्य तो हैं लेकिन उन्हें गौण ही मानना चाहिए। मुगल राजाओं की नजर से बचने के लिए घूंघट प्रथा चालू हुई। आततातियों से अपने आपको बचाने के लिए जौहर का चलन हुआ। स्त्री द्वारा बलि न करना शायद उसके कोमल स्वभाव को देखते हुये वर्जना की गई हो। जहाँ घूंघट का सवाल है, मुगल शासकों के पश्चात् भी यह सोचकर चलता रहा कि क्यों किसी की बुरी नजर स्त्री पर पड़े (पति का अपनी पत्नी की सुरक्षा के लिए चिन्तित होना वैसे ही जैसे स्त्री अपने पति के द्वारा पर-स्त्री की तरफ नजर डालना सहन नहीं कर सकती)। सती होना एक प्रथा स्वरूप समाज में रच बस गया, पतिव्रता होने का अनूप स्वरूप होकर, आदर व आस्था का रूप ले लिया था जो आज लगभग समाप्तप्राय है।

अब विचार करते हैं स्त्री व पुरुष के यौन स्वभाव पर-पुरुष का स्वभाव आक्रामक व सक्रिय ज्यादा होता है जबकि स्त्री का स्वभाव साधारण तथा निष्क्रिय होता है। (ऐसा जानवरों व पक्षियों में भी देखा जा सकता है) पुरुष पहल करता है जबकि स्त्री पहल कम ही करती है। स्त्री अनिच्छा होने पर भी शारीरिक सम्बन्ध बनाने में सहायक हो सकती है किन्तु पुरुष अनिच्छा होने पर शारीरिक रूप से सहायक नहीं हो सकता जो उसकी प्रकृति प्रदत्त मजबूरी है। दुष्कर्म होने की स्थिति में जैविक शारीरिक परिवर्तन होने की प्रबल सम्भावना होती है जबकि पुरुष में ऐसा नहीं है। फिर विचार करें यौन भावना उत्तेजित करने वाले अंगों पर। पुरुष में ऐसा कोई अंग नहीं है जो स्त्री की यौन भावनाओं को उत्तेजित करे। जबकि स्त्री में वक्ष, नितम्ब व जंघाएँ (महाकवि कालीदास रचित काव्य 'मेघदूत' में भी अपनी प्रेयसी के इन अंगों का यक्ष ने मेघ को पहिचान के लिए वर्णन किया है) ऐसे अंग हैं जो पुरुष की यौन

भावनाओं को प्राकृतिक रूप से उत्तेजित करते हैं। जननांग चाहे पुरुष के हों या स्त्री के, खुले देख कर वितृष्णा ही उत्पन्न होती है, आकर्षण नहीं। अतः अवांच्छित दुर्घटना को निमन्त्रण न देने के लिए कामोत्तेजित करने वाले अंगों को ढ़ांप कर रखने की प्रथा प्रचलित हुई जिसे आज आधुनिकता के नाम पर आवश्यकता से अधिक उभार देकर प्रदर्शित किया जा रहा है और जिसके परिणाम भी सामने हैं! बहुत से स्त्री संगठन इस सोच को दकियानूसी, पुरुष नजरिया सोच मानकर हाय-हुल्ला मचाते हैं, मानसिक सोच की कमी व स्त्री की स्वतंत्रता में अनधिकृत चेष्टा बताते हैं। हम व्यवहारिक रूप में उदाहरण स्वरूप देखें- अमूल्य वस्तुओं को हम घर के बाहर रखकर क्या चोरों को न्योता देते हैं? और चोरी होने पर आलोचना करते हैं कि चोरों की नियत, नजर व सोच खराब है, उसे दुरुस्त करने की आवश्यकता है। क्या ऐसी आलोचना कर हम हमारी चोरी गई वस्तु वापिस पा सकते हैं। इसलिए जरूरत है हमारी अमूल्य वस्तु को चोरों की नजर से बचा कर रखने की। इसके विपरीत कम मूल्य व जिनकी जोखिम कम हो, वाली वस्तुएँ घर में इधर-उधर पड़ी रहती हैं क्योंकि उनकी चोरी होने की जोखिम न के बराबर है!

देखा गया है कि लड़की या स्त्री के घर से अन्धेरे उजाले बाहर जाते अथवा देर से आने पर उन्हें टोका जाता है, लेकिन लड़कों के साथ ऐसा देखने को कम ही मिलता है। इन सब वर्जनाओं व टोका-टाकी का भी वही सम्भावित दुर्घटना होने की आशंका व चिन्ता ही है। आलोचना करने वाला/वाली इसे अपने परिवार के सदस्य के सदर्भ में लेकर देखे तो उसे महसूस होगा कि देर सबेर आने पर उन्हें भी चिन्ता होती है और वे भी टोका-टाकी करते हैं। कथनी और करनी में कभी स्त्री संगठनों का सार्वजनिक रूप से वक्तव्य देना केवल दिखावा मात्र है जो अपनी प्रसिद्धि के लिए दिया जाता है।

भाईयों के बराबर बहन का पिता की सम्पत्ति में बराबर के हक की मांग (जिसको कानून बनाकर अधिकार बना दिया गया है) मेरी अल्प बुद्धि की समझ के बाहर है। लड़की विवाह पश्चात् ससुराल में पति की सम्पत्ति की पूरी अधिकारिणी बन जाती है (पति से विवाद के बाद भी वह उसकी आधी सम्पत्ति की व भरणपोषण की अधिकारिणी होती है) फिर पिता की सम्पत्ति में हिस्सा लेना कहाँ तक उचित है, दोनों हाथों में लड्डू जैसा है! हाँ, अविवाहित पुत्री का पिता की सम्पत्ति में भाईयों के बराबर का अधिकार होना चाहिए! फिर दूसरी तरफ विवाहिता की ननद वैसे ही (जैसे वह अपने पिता की सम्पत्ति में अधिकार चाहती है) अपने पिता (उसके ससुर) की सम्पप्ति में हक होने का अधिकार मांगेगी। इस प्रकार से एक तरफ से प्राप्त सम्पत्ति दूसरी ओर चली जायेगी, कम हो जायेगी। और बहन भाईयों में विरोध खड़ा होकर बहन भाई के पवित्र रिश्ते में दरार पड़ जायेगी। प्रोपर्टी के लालच में जगह-जगह कोर्ट केस होंगे (जो आज के दिन बहुत होने लगे हैं) भारतीय संस्कारों में वैसे भी पिता व भाई, बेटी/बहनों को सात जन्म तक किसी न किसी रूप में सहायता करते रहते हैं। आपातकाल में भी बहन की सहायता पीहर पक्ष की तरफ से दी जाती रही है। वैसे भी भारतीय समाज में परम्परा है कि बेटी/बहन को दिया जा सकता है किन्तु लिया जाना धार्मिक रूप से वर्जनीय है। अगर हमारे समाज में यह सब है तो फिर क्यों यह सब हायतौबा और कानून! दान मजबूरी में दिया हुआ दर्द देता है और स्वेच्छा से दिया गया मन निर्मल करता है व रिश्तों में प्यार, घनिष्टता व आदर का भाव पैदा करता है।

स्त्रियों की माँग को देखते हुये सरकारी बसों में कुछ सीटें आरक्षित कर दी गई हैं! उस पर पहले से बैठे व्यक्ति को वह अधिकार स्वरूप उठने को बाध्य कर देती है। कानूनवश वह उठता है लेकिन मन में कटुता लिए हुये और स्त्री को अपने दर्प की तुष्टी होती प्रतीत होती है। इसके विपरीत पूर्व में स्त्री को खड़ी देखकर व्यक्ति उसकी कोमल काया व मात्रत्व के बोझ से लदी देखकर सहानुभूति स्वरूप स्वयं अपनी सीट का त्याग कर स्त्री को

बैठने का आग्रह करता था। स्त्री के सीट पर बैठने पर, सीट छोड़ने वाले व्यक्ति के प्रति आदर का भाव जाग्रत होता था, और छोड़ने वाले व्यक्ति का मन निर्मल होता था व इसे अपना धर्म समझता था।

कठिन परिस्थितियाँ पैदा न करने वाली नौकरियों में स्त्री अगर अपने आपको सक्षम व उचित समझती है और अगर उसकी आवश्कता भी है, नौकरी करती है तो कोई बुराई नहीं है किन्तु ऐसी नौकरी, जिसमें पग-पग पर खतरा, असुरक्षा व स्त्रियों की गरिमा पर खतरा हो और स्त्रियों द्वारा वांच्छित सुविधाओं को देना असम्भव होता है, करना कहाँ तक उचित है। स्त्रियों का सेना में भर्ती होने का दुस्साहस करना जहाँ शत्रु से आमने-सामने लड़ाई युद्ध के मैदान में करने की नौबत आती है (आर्टलरी व इनफेन्ट्री) कहाँ तक जायज है यह पुरुष की बराबरी। युद्ध महिनों तक चल सकता है जिसमें हर चीज का अभाव सैनिक को सहन करना पड़ता है! स्त्री के लिए वांछनीय नहीं है। दूसरी ओर वायुसेना में ट्रांसपोर्ट हवाई जहाज व हेलीकॉप्टर का पाइलट बनना तो किसी हद तक सुरक्षित है किन्तु लड़ाकू जहाज का पाइलट बनना कितना जोखिम भरा है युद्ध के समय, वह भुक्तभोगी ही जानता है। लड़ाकू पाइलट को विमान लेकर शत्रु के क्षेत्र में बमबारी के लिए जाना पड़ता है। पिछले भारत-पाक युद्धों में कई परिस्थितियाँ ऐसी आई जिसमें जहाज क्षतिग्रस्त होने पर पाइलट को शत्रु क्षेत्र में पैराशूट खोलकर कूदना पड़ा है। ऐसी अवस्था में स्त्री पाइलट के जिन्दा पकड़े जाने पर उसकी शत्रु द्वारा क्या हालत की जायेगी, कल्पना से बाहर है।

ऐसा नहीं है कि स्त्रियों पर अत्याचार/शोषण वर्तमान समय में ही हो रहा है। द्वापर व त्रेतायुग में भी द्रौपदी व सीता जी से दुर्व्यवहार की दुखद-घटनाओं के फलस्वरूप महायुद्ध हुये हैं। जहाँ राम व कृष्ण होंगे वहाँ रावण व दुर्योधन भी होंगे, देवता होंगे तो राक्षस भी होंगे! यह सब अवाच्छनीय है किन्तु सब आततातियों का अन्ततः विनाश भी हुआ है। लेकिन इसी तरफ यह भी कहना पड़ेगा कि सीताजी अगर लक्ष्मण-रेखा न लांघती और द्रौपदी दुर्योधन पर ताना (अन्धे की औलाद अन्धी ही होगी) न कहती तो इस पर यह अत्याचार न होता और दोनों महायुद्धों की नौबत भी नहीं आती! अपनी ईश्वर प्रदत प्राकृतिक सीमाओं को लांघने के फलस्वरूप विपदा आना स्वभाविक है जिन्हें सहन करने के लिए तैयार तो रहना ही पड़ेगा। -

भारतीय सामाजिक व्यवस्था विज्ञान पर आधारित है, जिसकी अन्य देशों की व्यवस्थाओं में कमी है और वहाँ उच्छृंखलता की बहुतायत है। अतः अपने को अपनी उन्नत संस्कृति व व्यवस्था को नहीं छोड़ना चाहिए बल्कि अन्य संस्कृतियों के मानने वालों के सामने उदाहरण बन उन्हें भी ऐसी व्यवस्था अपनाने के लिए प्रेरित करना चाहिए!

अतः मेरा माताओं, बहनों व बेटियों से निवेदन है कि वे पुरुष से प्रतिस्पर्धा न कर अपने प्रकृति प्रदत उत्तम व असीम गुणों की महत्ता पर गर्व करें जिनका पुरुष के पास अभाव है। इस तरह से आप नैसर्गिक रूप से अपने आपको पुरुष से अधिक महत्त्वपूर्ण समझेंगी व आज जो हीन भावनावश तथाकथित स्वतन्त्रता के नाम पर ऊल-जलूल तरीके से पेश आने की है उस कसमकस से मुक्ति पा सकेंगी।

राजस्थानी में पेश -

नारी सकल सृष्टि धात्री, कर निज गुणा गरूर।
होड होड मैं नर बणै, मतां गमावै नूर।।

नारी नर की छांवली, नहीं न दास गुलाम।
नर बणबा की होड़ मैं, नारीत्व रुळ्यो तमाम।।

जो कार्यकर्ता जयकारों, फूलों की मालाओं और प्रशंसा के लिए अथवा यश और पद के लिए समाज का कार्य करता है, वह अपनी आत्मा को धोखा देता है।

- पू. तनसिंह जी

अपनी बात

जीवन में हम अनेक प्रकार की कामनाएँ करते रहते हैं। कभी किसी भी काम में संतोष हो जाए ऐसा लगभग नहीं होता। काम चाहे धन कमाने को हो, राजनैतिक क्षेत्र में महत्त्व का हो, पद प्राप्ति को हो, कामनाएँ बढती ही जाती हैं। इस सम्बन्ध में एक बोध-कथा में बड़ी सीख मिलती है।

एक युवक एक साधु के पास गया और पूछा कि क्या आप मुझे जीवन का राज समझाएंगे? मैं बहुत गुरुओं के पास गया हूँ, बहुत ठोकरें खाई दर-दर की, बहुत धूल फांकी है राहों की; मगर कोई मुझे जीवन का राज नहीं समझा सका। जिसने जो कहा, वही मैंने किया। उनके कहने पर उल्टा खड़ा हुआ, यह खाओ, यह मत खाओ को माना, ऐसे सोओ, ऐसे मत सोओ का पालन किया, पता नहीं कितनी कवायदें करके आया हूँ, थक गया हूँ। आपका किसी ने पता दिया तो आपके पास आया हूँ। जीवन का राज आम मुझे समाझाएँगे?

उस साधु ने युवक को गौर से देखा और कहा- 'समझाऊंगा, लेकिन एक शर्त है। पहले मैं कुए से पानी भरूंगा।' युवक थोड़ा हैरान हुआ शर्त सुनकर कि कुए से पानी पहले भरूंगा, तुम भी साथ रहना और जब तक मैं पानी न भर लूं तू बीच में बोलना मत। जब मैं पानी भर चुकूं, फिर तुम बोल सकते हो।

युवक ने कहा 'यह भी कोई कठिन बात है, आप मजे से पानी भरो।' मगर उसे थोड़ा शक हुआ कि यह आदमी पागल मालूम होता है। मैं जीवन का राज पूछ रहा हूँ, इतना महान प्रश्न और यह कहाँ की शर्त लगा रहा है। साधु के निवास के सामने ही कुआ है, मजे से भरे पानी, मैं क्यों बोलूंगा, मुझे बोलने की जरूरत क्या है। यह शर्त नहीं लगाई होती तो भी मैं तो न बोलता। कोई कुए से पानी भर रहा हो, उसमें बोलने की बात ही क्या है, भर लो।

युवक ने कहा-'बिल्कुल तैयार हूँ, आप कुए से पानी भर लें।' लेकिन उसे भी थोड़ा शक तो हुआ ही कि यहाँ जीवन का राज मिलेगा कि कुछ.....यह आदमी कुए में धक्का-वक्का न मार दे। यह अजीब-सा आदमी मालूम होता है। जब साधु ने बाल्टी उठाई और रस्सी ली तब तो युवक ने समझ लिया कि गये काम से, यह यात्रा भी बेकार हुई। जरा कुए से दूर ही खड़ा रहना ठीक है, क्योंकि बाल्टी उसने देखी, उसमें पेंदी थी ही नहीं। युवक ने सोचा मारे गये, यह कब पानी भरेगा? यह तो पूरी जिन्दगी में भी नहीं भर सकता। सोचा मैंने कहाँ इस शर्त में हाँ भर दी। फिर भी सोचा थोड़ी देर देखो, आना-जाना बेकार तो हो ही गया, अब इतनी दूर आ ही गए हैं तो देखें यह क्या करता है। कुए से दूर ही खड़ा हो गया कि कहीं मैं देखने लगूँ और यह धक्का मार दे तो जीवन का राज तो एक तरफ रहे, जीवन भी जाए हाथ से। भंगेडी-गंजेडी है या क्या मामला है? यह भी नहीं देख रहा है कि बाल्टी में पेंदी है ही नहीं और पानी भरने चला है।

साधु ने रस्सी बांधी और कुए में बाल्टी लटकाई। युवक खड़ा देखता रहा, चुप रहा। बड़ा संयम रखना पड़ा उसको। मन तो बार-बार हो रहा था कि कह दे कि भइया क्या तुम मुझे जीवन का राज बताओगे, मैं तुम्हें कम से कम पानी भरने का राज बता सकता हूँ। तुम कम से कम पानी भरना तो सीख लो। लेकिन याद करके कि शर्त है, जरा चुप रहना ठीक है।

बड़ा संयम रखना पड़ा होगा। ऐसी स्थिति में संयम रखने के लिए अपने आपको बांधे खड़ा रहा। जबान और मुँह को बिल्कुल जकड़े रहा कि कहीं कोई बात निकल ही न जाए। जरा देख तो लूं यह करता क्या है। साधु ने खूब बाल्टी खड़खड़ाई कुए में झांक कर देखा, बाल्टी भरी दिखाई दी, क्योंकि पानी में डुबी थी। फिर खींची। खाली की खाली बाल्टी ऊपर आई। फिर दुबारा डाली, तिबारा डाली, अगली बार डाली तो उस युवक ने कहा- 'जयराम जी! अब मैं चला। यह तो पूरी जिन्दगी में भी पानी भरेगी नहीं।

साधु ने कहा कि तुम बीच में बोल गये, राज बताने का मैंने पक्का कर लिया था। तुम्हारी मर्जी। रास्ता पकड़ो।

युवक चला गया पर रात भर सो न पाया। क्योंकि उस साधु ने कहा था– 'तुम्हारी मर्जी रास्ता पकड़ो! वैसे मैंने तय किया था कि जीवन का राज बता ही दूंगा। मैंने मेरी तरफ से भूमिका बना ली थी, मगर तुम बीच में बोल गये, शर्त तुमने तोड़ दी, तुम इतना संयम भी न रख सके तो जाओ।' जिस ढंग से उसने कहा था और उसकी आँखों में जो चमक थी, उसको भूल न सका और रात भर सो न सका। करवटें बदलता रहा कि मैं थोड़ी देर और चुप रह जाता तो मेरा क्या बिगड़ता, ऐसे भी जिन्दगी खराब की, अगर वह दो-चार घंटे खराब भी करवाता तो क्या था। हो सकता है इसमें कोई परीक्षा हो, पात्रता की परीक्षा हो, धैर्य की परिक्षा हो, प्रतीक्षा की परीक्षा हो, मैं चूक गया। उसकी आँखें कहती हैं कि उसे कुछ पता है। उसकी आँखों के जलते दीये कहते हैं उसके चेहरे पर कुछ बात है, जो मैंने कहीं और नहीं पाई।

सुबह ही सुबह भागा हुआ आया, पैरों पर गिर पड़ा। कहा– 'मुझे माफ करो, फिर कुए पर चलो। और जितना भरना हो भरो, मैं बैठा रहूँगा।' उस साधु ने कहा कि सच बात तो यह है कि कुए से पानी भरने में जो राज था वह मैंने तुमसे कह ही दिया है, अब बचा नहीं कुछ कहने को। अगर तुम बाल्टी में और उसकी पेंदी में ज्यादा न उलझे होते तो बात तुम्हारे समझ में आ जाती। तृष्णा बेपेंदी की बाल्टी है। भरो खड़खड़ाओ कुए में, खूब खींचो, एक जिन्दगी नहीं, अनेक जिन्दगी खींचते रहो– खाली के खाली ही रहोगे। जब भी बाल्टी आएगी खाली ही आएगी। कुए बदल लो, इस कुए से उस कुए जाओ, उस कुए से उस कुए पर जाओ। यही तो लोग कर रहे हैं। मगर कुओं का क्या कसूर? बाल्टी वही की वही। तू देख सका कि बाल्टी में पैंदी नहीं है? अब जा इस पर विचार कर। तृष्णा में भी पेंदी नहीं है।

इसीलिए पीने से यहाँ प्यास बढ़ती है। पेंदी ही नहीं है बल्कि उल्टी बात है-जैसे कोई आग बुझाने को आग में घी डालता है। जितना तुम तृष्णा करते हो, जितनी तुम वासना करते हो, जितनी तुम कामना करते हो, उतनी ही कामना और प्रज्वलित होती है। वासना में और आग उठती है। तृष्णा में और नया ईंधन गिर जाता है। इसी को समझ लो बस और राज समझ गये जीवन का।

यह कर लूं, वह कर लूं, यह पा लूँ, वह पा लूँ; यही बाजार भरा पड़ा है। इसीलिए जीवन का राज समझ में नहीं आता। अन्य कुछ देख ही नहीं पाते क्योंकि आँखों में तृष्णा की धूल भरी है।

इस बोध कथा को भली प्रकार समझ लें, इसी से सही राह पर आ सकेंगे। तृष्णा की व्यर्थता दिखाई पड़ गई तो तृष्णा हाथ से छुट जाएगी। और जहाँ तृष्णा हाथ से गई, जहाँ कामना हाथ से छूट गई, वासना हाथ से छुट गई, वहाँ जो शेष रह जाता है, वही आत्मा है। इससे व्यक्ति भी बचा, एक सन्नाटा भी बचा। तृष्णा रहित चैतन्य का नाम ध्यान है। क्योंकि जहाँ वासना नहीं है, वहाँ विचार के जन्म ही नहीं होते। वासना के बीज में ही विचार के अंकुर निकलते हैं। विचार तो वासना का सहयोगी है, उसका साथ देने वाला है। मन में विचार उठते हैं तभी वासना पकड़ लेती है। जब वासना कम होती है तो विचार भी कम होते हैं। जब वासना बिल्कुल नहीं होती तो विचार नहीं होते। अतः तृष्णा को विचार का आधार न मिले, ऐसा आत्मचिंतन सदैव बना रहे।

वस्तुत: अन्धा कौन?

वस्तुत: अन्धा वह जन नहीं है, ज्योति हीन है जिसकी आँख।
वस्तुत: अन्धा तो वह जन है, जो निज दोषों को रखता है ढाँका।

– अल्पज्ञ

शिविर सूचना

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं –

क्र.सं.	शिविर	समय	स्थान, मार्ग आदि
01.	उ.प्र.शि.	18.5.2024 से 29.5.2024	गांधीनगर इन्टर नेशनल स्कूल राधेजा गाँव–गांधीनगर

गांधीनगर से 12 कि.मी. दूर साबरमती रेल्वे स्टेशन से 33 कि.मी. दूर कालुपुर रेल्वे स्टेशन से 37 कि.मी. दूर

पात्रता– कम से कम 2 प्राथमिक शिविर, एक माध्यमिक शिविर किया हुआ हो। 10वीं कक्षा की परीक्षा दी हुई हो।

1. 50 वर्ष से अधिक उम्र वालों को शिक्षण के सहयोगी के रूप में ही बुलाया जाएगा। यह आयु सीमा केन्द्रिय कार्यकारी, सम्भागप्रमुख व प्रान्तप्रमुख पर लागू नहीं है। **2.** गणवेश अनिवार्य है। **3.** सायंकालीन प्रार्थना के लिए धोती, कुर्ता व केशरिया साफा लाना है। **4.** 23 मई को बीच में आ सकते हैं, संभाग प्रमख से स्वीकृति लेकर।

क्र.सं.	शिविर	समय	स्थान, मार्ग आदि
02.	मा.प्र.शि. (बालिका)	23.5.2024 से 29.5.2024	काणेटी प्राथमिक शाला, UPO काणेटी तह. साणंद जिला–अहमदाबाद (गुजरात)

पात्रता– कम से कम तीन शिविर किए हुए हो। दसवीं की परीक्षा दी हुई हो। आयु 16 वर्ष से 30 वर्ष के बीच।

1. तीस वर्ष से अधिक आयु वाले को शिक्षण के लिए बुलाया जावे वे ही आएँ। **2.** गणेश अनिवार्य है। **3.** सायंकालीन प्रार्थना हेतु साड़ी या लहंगा-लूगड़ी केशरिया। **4.** साबरमती रेल्वे स्टेशन से 30 कि.मी. तथा आसरवा रेल्वे स्टेशन से 30 कि.मी.।

दीपसिंह बेण्याकाबास

शिविर कार्यालय प्रमुख (श्री क्षत्रिय युवक संघ)

पृष्ठ 7 का शेष

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

की बांहें अनन्त काल और अनेक युगों से नहीं फैली हुई हैं? क्या तुमने मुझे पहचाना? नहीं, तो पहचानो। पहचान गए तो क्या तुम उस सहयोग को दे सकते हो जिसकी तुमसे कामना की जा रही है। यदि सहयोग दे सकते हो तो कोई भी अवसर जाने न दो। यदि सहयोग की रूपरेखा स्पष्ट नहीं है तो जानने का यत्न करो। जो जानकार हैं उनसे पूछो और यदि यह सहयोग नहीं दे सकते तो प्रयत्न करो उस क्षमता को जुटाने की जो सहयोग दे सकती है।

तुम्हारा पथ प्रदर्शक और मार्ग दर्शक, बाहर भी है- बाँहें पसारे तुम्हारे सहयोग की कामना कर रहा है और वही पथ प्रदर्शक तुम्हारे भीतर भी है। जिस दिन तुमने उसे भीतर पा लिया, उस दिन तुमने समझ लो कि सब कुछ पा लिया। भगवती तुम्हारा मंगल करे मेरी सहायता के लिए कभी संकोच न करना।

तुम्हारा अंतरंग आत्मीय : **तनसिंह**

इण मस्ती रो रस जिण चाख्यो और स्वाद नहीं भावै।
मनवारां ने निरख बावळा प्याला कुण भर लावै।।
मिनख पणै रो मोल गमा मत जाजमड़ी उठ जासी।
टुक पीलै रे प्यालो कै पुल ओ कुण जाणै फिर आसी।।
इण पगल्याँ में अटकी आशा काँप मती पग धरताँ।
जग जीत्यो तैं मन भी जीत्यो हार न हिवड़ो डरताँ।।
थारा म्हारा बचन है बाँधू साथ रेवाँला मरताँ।
प्यालै ने होठाँ पर रख ले, फेर जुगत नहीं आणी।।
काँप उठेला धरती आभो, गई बखत फिर ल्याणी।
आँखड़ली रो एक झबूको, कई नया रंग ल्याप्सी।
टुक पीलै रे प्यालो कै पुल ओ कुण जाणै फिर आसी ।।

(क्रमशः)

अरूण प्रतापसिंह बस्तवा

NDA-152 की अन्तिम चयन मेरिट सूची में ऑल इंडिया में 9वी रैंक हासिल कर समाज को गौरवान्वित किया है। अरूण प्रताप ने UPSC द्वारा लिए जाने वाले विस्तृत 5 दिवसीय साक्षात्कार को लगातार तीसरी बार चयनित होते हुए तीसरे SSB में NDA इतिहास में आज तक का सर्वश्रेष्ठ स्कोर 537 अंक हासिल कर इतिहास बनाया।यह स्कोर साक्षात्कार में आज तक कोई हासिल नहीं कर पाया है।

1 7 वर्ष के इस होनहार विद्यार्थी ने घर में दादाजी की बिमारी की विकट परिस्थितियों में भी मयूर चौपासनी से 12th में 95% के साथ उत्कृष्ट परिणाम देते हुए इस सफलता को भी हासिल कर परिवार की चतुर्थ पीढ़ी को देश सेवा में समर्पित करवाने में कामयाब रहा।

शुभेच्छु :– पदम सिंह ओसियां, हरि सिंह ढेलाणा, प्रेम सिंह परेऊ, सुमेर सिंह चौरड़िया, गेन सिंह चान्दनी, मदन सिंह आसकन्द्रा, उमेद सिंह सेतरावा, लुणकरण सिंह तेना, देवी सिंह बेलवा, दिलीप सिंह गड़ा, भवानी सिंह पीलवा, साँवत सिंह उंचाईडा, उत्तम सिंह नाहर सिंह नगर

MADHAVGARH HOTEL AND RESORT

Marriage Garden | AC/Non Room | Party Hall | Restaurant

Opp. Ramjan Hatha, Near SBI Bank, Banar Road, Jodhpur-342015
Mobile : 8233660948, 9829179525

श्री जय अंबे स्वयं सेवक संघ

-: श्री जय अंबे स्वयं सेवक संघ के कार्य :-

- साइकल स्कीम
- 700 सभ्य की बचत स्कीम
- व्यसन मुक्ति
- कुरिवाज का त्याग
- अंध श्रद्धा को दूर करना
- प्राथमिक कक्षा के बालकों के लिए हर साल फ्री में नोटबुक और जरूरी सामग्री देना
- इनाम वितरण
- दशहरा महोत्सव
- महाराणा प्रताप जयंती महोत्सव
- गांव की प्राथमिक स्कूल में कंप्यूटर लेब निशुल्क बालकों के लिए

देवेंद्रसिंह, घनश्यामसिंह
अध्यक्ष

सिद्धराजसिंह, अनिरुद्धसिंह
उपाध्यक्ष

हशपालसिंह, जयदीपसिंह
उपाध्यक्ष

यशराजसिंह, तजवितसिंह
मंत्री

हिरेन्द्रसिंह जदुभा
संगठन मंत्री

मित्राजसिंह, नवलसिंह
संगठन मंत्री

महावीरसिंह, महेंद्रसिंह
छात्र पुरस्कार वितरण – समन्वयक

भगीरथसिंह, किशोरसिंह
छात्र पुरस्कार वितरण – समन्वयक

रामदेवसिंह नारुभा
महाराणा प्रताप वर्षगांठ – समन्वयक

शक्तिसिंह, राजेन्द्रसिंह
महाराणा प्रताप जयंती – सह संयोजक

सिद्धराजसिंह, जयेंद्र सिंह
दशहरा महोत्सव समन्वयक

युवराजसिंह, महेंद्रसिंह
दशहरा पर्व – सह संयोजक

नवरात्रि की हार्दिक शुभकामनाएं

IAS / RAS

तैयारी करने का राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

स्प्रिंग बोर्ड

Spring Board

Springboard Academy, Main Riddi Siddi Choraha,
Opposite Bank of Baroda, Gopalpura, Bypass Jaipur
Website : www.springboardindia.org

मई सन् 2024
वर्ष : 61, अंक : 05

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या – Jaipur City /411/2023-25

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्..

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह